# शोधादर्श

## ६५

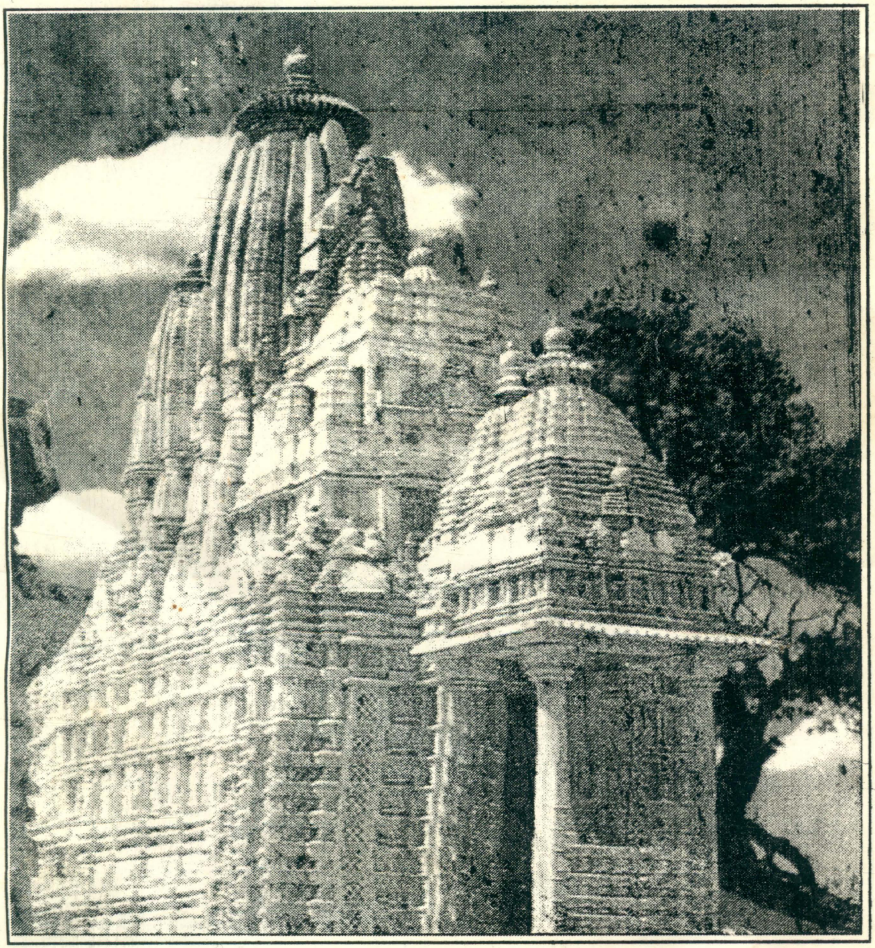

भगवान पार्श्वनाथ मंदिर, खजुराहो

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, लखनऊ

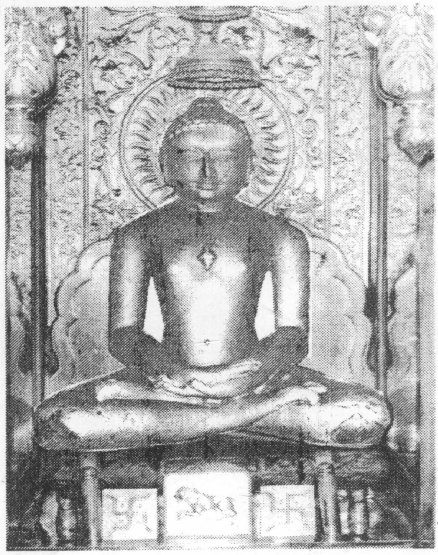

## वर्धमान महावीर स्वामी

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीर जी

अपलक तुम्हारी छवि निरखकर, नयन निज में विचर जाते।
आत्मबल से आत्म-छाया, आत्मतल पर खींच लाते।
भावभाषा, भावपूजा, भावसमिधा भावथाली।
भाव चंदन, धूप, अक्षत, भावना के पुष्प आली।
भाव भीने गीत गाऊँ, भाव की अभिव्यंजना है।
वीर तेरी वन्दना है।।

चन्द्रमुख से चन्द्रिका-सी, झर रही जो अमियवाणी।
सुनी भी अगणित जनों ने, तर गये अनगिनत प्राणी।
खींचती है भक्ति तेरी, दूँ तुझे मैं क्या समर्पण।
दोष मेरे दिख सकेंगे, बन गया तू आज दर्पण।
जयति जय है जयति जय जय, वीर तेरी अर्चना है।
वीर तेरी वन्दना है।।

**-श्रीमती ज्ञानमाला जैन**

('यह जीवन कठिन कहानी है' से साभार)

| | | |
|---|---|---|
| आद्य सम्पादक | : | (स्व.) डॉ. ज्योति प्रसाद जैन |
| पूर्व प्रधान सम्पादक | : | (स्व.) श्री अजित प्रसाद जैन |
| सलाहकार | : | डॉ. शशि कान्त |
| सम्पादक | : | श्री रमा कान्त जैन |
| सह–सम्पादक | : | श्री नलिन कान्त जैन |
| | | श्री सन्दीप कान्त जैन |
| | | श्री अंशु जैन 'अमर' |

**प्रकाशक :**

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र.

ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ- २२६ ००४


णाणं णरस्स सारं- सच्चं लोयम्मि सारभूयं

# शोधादर्श -६५


वीर निर्वाण संवत् २५३४ जुलाई २००८ ई.


## विषय क्रम


| | | | |
|---|---|---|---|
| १. | गुरुगुण कीर्तन : डॉ. महेन्द्र कुमार न्यायाचार्य | श्री रमा कान्त जैन | १ |
| २. | सम्पादकीय : अस्वीकार का अधिकार | श्री रमा कान्त जैन | ५ |
| ३. | समसगढ़-भोपाल का पुरातत्त्व | डॉ. ज्योति प्रसाद जैन | ६ |
| ४. | कवित्त | भैया भगवतीदास | १३ |
| ५. | वीर शासन जयन्ती | श्री अजित प्रसाद जैन | १४ |
| ६. | Awakening among the Jains during 19th-20th centuries | डॉ. शशि कान्त | १८ |
| ७. | पारदर्शी दोहे | श्री ऊँ प्रकाश 'पारदर्शी' | २४ |
| ८. | हिंसाबहुल समाज में अहिंसा की भूमिका | डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव | २५ |
| ९. | आगमिक तथ्यों के आलोक में जलाभिषेक बनाम पंचामृत अभिषेक | डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल | २८ |
| १०. | मध्य युग का एक फक्कड़ साहित्यकार कवि पं. बनारसीदास जैन | डॉ. मालती जैन | ३६ |
| ११. | कविवर पुष्पेन्दु जैन | श्री दयानन्द जड़िया 'अबोध' | ४३ |

१२. आत्म कल्याण के दस चरण — श्रीमती इन्दु कान्त जैन — ४६
१३. शोध टीप : वनस्पति : धर्म एवं विज्ञान के भ्रम — श्री अजित जैन 'जलज' — ५२
१४. गीत — डॉ. गणेशदत्त सारस्वत — ५३
१५. तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र., प्रगति प्रतिवेदन वर्ष २००७-२००८ — ५४
१६. महावीर उतरो जीवन में — डॉ. महावीर प्रसाद जैन — ५६
१७. शोक संवेदन — ६०
१८. इक्कीसवीं शताब्दी के एक दूरदृष्टा समाजोद्धारक संत श्री सन्दीप कान्त जैन उपाध्याय ज्ञानसागर — ६१
१९. साहित्य-सत्कार : — श्री रमा कान्त जैन — ६३
श्रवणबेलगोल-चन्द्रगिरि अभिलेख; विश्वलोचन कोश;
आचार्य रविषेण कृत पद्मपुराण; जैन धर्म; खोज गांधी की;
रचनात्मक कार्यक्रम द्वारा अंत्योदय एवं मेरा जीवन विकासः
अण्णा सहस्रबुद्धे; विविध साहित्य
२०. समाचार विविधा : — ७२
तवाव नगर में भव्य प्रतिष्ठा; जैन म्यूजियम का लोकार्पण;
छत्तीसगढ़ में जैन पुरातत्त्व पर राष्ट्रीय संगोष्ठी;
कर्मवीर भाऊराव पाटील; बी.एल. इन्स्टीट्यूट ऑफ इंडोलोजी, दिल्ली,
में व्याख्यान; श्री स्याद्वाद महाविद्यालय का शताब्दी समारोह;
श्रुत पंचमी पर्व और शोध पुस्तकालय स्थापना दिवस;
डॉ. ज्योति प्रसाद जैन स्मृति-गोष्ठी;
अमर शहीद अमरचन्द बांठिया का १५०वां बलिदान दिवस;
श्री अजित प्रसाद जैन की तृतीय पुण्यतिथि; जैन स्वर्ण मन्दिर;
पश्चिम बंगाल तथा दिल्ली सरकार द्वारा भी जैन समाज को अल्पसंख्यक दर्जा
२१. सामयिक परिदृश्य : क्षणिकाएं — श्री रमा कान्त जैन — ७९
२२. अभिनन्दन — ८०
२३. आध्यात्मिक पद — कवि बुधजन — ८२
२४. पाठकों के पत्र — ८३

---

# डॉ. महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य

विलक्षण प्रतिभा के धनी, लेखक अरु पत्रकार।
कुशल अध्यापक-संपादक, पंडित महेन्द्रकुमार।।
संस्कृत-प्राकृत के ज्ञाता, दर्शन के पटु विद्वान।
थे भारती के सपूत, रखते अनुपम ज्ञान।।

बीसवीं शती ईस्वी में जैन जगत की जिन विभूतियों ने अल्प समय में ठोस कार्य कर माँ भारती का भाल गर्वोन्नत किया उनमें डॉ. महेन्द्र कुमार न्यायाचार्य की भी गणना है। न्यायाचार्य जी के दर्शन करने का सुयोग तो मुझे प्राप्त नहीं रहा, किन्तु किशोरावस्था से ही उनका नाम मेरे कर्ण-कुहुरों में पड़ता रहा। मेरे पिताजी डॉ. ज्योति प्रसाद जी से उनकी पत्र-मित्रता रही। उनका लेख 'आचार्य अनन्तकीर्ति का समय' पिताजी द्वारा सम्पादित **जैन-सन्देश शोध विशेषांक** १ (१७ जुलाई, १९५८ ई.) में पृष्ठ ३५-३९ पर प्रकाशित हुआ था और उनकी कई कृतियां पिताजी के पुस्तक संग्रह की शोभा बनीं।

श्री कुन्दनलाल जैन के **'श्रुत-आराधक'** के अनुसार महेन्द्र कुमार जी ठिगनी काठी और सुगठित स्वस्थ शरीर वाले व्यक्ति थे। अखिल भारतीय दिगम्बर जैन शास्त्रि-परिषद् द्वारा सन् १९७६ ई. में प्रकाशित **'विद्वत् अभिनन्दन-ग्रन्थ'** में पृष्ठ ४०९ पर उनके परिचय के साथ दिये गये चित्र में उनका उन्नत ललाट, भारी भरकम चेहरा, हल्की मूँछें, सफेद टोपी और कमीज के ऊपर कन्धे पर उत्तरीय जैसा परिधान दीख पड़ता है, जो उनके सौम्य व्यक्तित्व का परिचायक है।

महेन्द्र कुमार जी का जन्म बैसाख मास की पूर्णिमा, ११ मई, १९११ ई. को मध्य प्रदेश के सागर जिले की खुरई तहसील में श्री जवाहरलाल जैन के घर श्रीमती सुन्दरबाई की कोख से हुआ था। मंगलजीत और स्वतंत्रता सेनानी धन्यकुमार नामक इनके दो भाई थे तथा दो बहनें थीं। प्रारम्भिक शिक्षा खुरई में हुई। तदनन्तर महेन्द्रकुमार श्री नाभिनन्दन पाठशाला, बीना, और सर हुकमचन्द जैन महाविद्यालय, इन्दौर, आगे अध्ययन करने गये। प्रारम्भ से ही वह कुशाग्र बुद्धि और प्रतिभावान रहे। 'शास्त्री' परीक्षा तथा बंगाल संस्कृत एसोसिएशन, कोलकाता, की 'न्यायतीर्थ' परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करने के साथ उनकी गणना विद्वानों में होने लगी और मात्र १९

वर्ष की वय में सन् १९३० ई. में उन्हें स्याद्वाद महाविद्यालय, वाराणसी, में दर्शनशास्त्र के अध्यापक की नियुक्ति मिल गई। १३ वर्ष तक वह उक्त महाविद्यालय में सेवारत रहे। उस अवधि में अपने विषय में अध्ययन-अध्यापन कार्य के अतिरिक्त उस महाविद्यालय के 'अकलंक सरस्वती भवन' नामक पुस्तकालय को उन्होंने सुनियोजित ढंग से सजाया, सम्हाला और संस्कृत, प्राकृत, पालि और हिन्दी के दुर्लभ ग्रन्थों से सुशोभित किया। उनकी अभिलाषा उस भवन को शोध केन्द्र का रूप देने की थी। वह स्वयं उस भवन में बैठकर घण्टों शोधकार्य करते थे। उन्होंने 'न्यायाचार्य' की परीक्षा भी उत्तीर्ण की।

शीघ्र ही महेन्द्र कुमार जी की पाण्डित्य-प्रतिभा की सुरभि चतुर्दिक् फैलने लगी। उनकी पहचान एक होनहार, सुलझे विचारों वाले, अर्थात् जिसकी पन्थ-ग्रन्थि ढीली हो, ऐसे जैन दर्शन के ज्ञाता दिगम्बर जैन विद्वान के रूप में होने लगी। उनकी इस पहचान को परख गुण-ग्राहक पं. नाथूराम प्रेमी ने श्वेताम्बर जैन विद्वान् प्रज्ञाचक्षु पं. सुखलाल संघवी से, जब जुलाई १९३३ ई. में वह मुम्बई से काशी हिन्दू विश्वविद्यालय कार्यभार ग्रहण करने जाने लगे, आग्रह किया कि वह काशी में तरुण पं. महेन्द्रकुमार जी से सम्पर्क कर उनसे प्रभाचन्द्र (९८०-१०६५ ई.) विरचित **'न्यायकुमुदचन्द्र'** का वैसा ही सर्वांगीण सम्पादन करने को कहें जैसा कि उन्होंने स्वयं **'सन्मतितर्क'** का सम्पादन किया है। महेन्द्र कुमार जी ने पं. सुखलाल जी और प्रेमी जी का अनुरोध स्वीकार कर न्याय विषयक उक्त ग्रन्थ का सम्पादन पं.कैलाशचन्द्र शास्त्री के सहयोग से किया। उनके द्वारा सम्पादित **'न्यायकुमुदचन्द्र'** को दो भागों में क्रमशः सन् १९३८ व १९४१ ई. में प्रेमी जी ने अपनी माणिक चन्द्र दिगंबर जैन ग्रन्थमाला, मुम्बई, से प्रकाशित कराया। इस ग्रन्थ के प्राक्कथन में पं. सुखलाल संघवी ने लिखा था, "मैं पण्डित महेन्द्र कुमार जी की प्रस्तुत गवेषणापूर्ण एवं असाधारण कृति का हृदय से अभिनदन करता हूँ।" और संस्कृत के उद्भट विद्वान डॉ. मंगलदेव शास्त्री ने टिप्पणी की थी, "जैन दर्शन के साहित्य का सम्पादन प्रारम्भ हो गया है और इसका सर्वप्रथम श्रेय पण्डित महेन्द्र कुमार जी को जाता है।"

सन् १९४४ ई. में साहू शान्ति प्रसाद जैन ने साहित्य प्रकाशन संस्था भारतीय ज्ञानपीठ की स्थापना की और महेन्द्र कुमार जी की विद्वत्ता से प्रभावित हो उन्हें ज्ञानपीठ का निदेशक नियुक्त किया। वह सन् १९५० ई. में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में बौद्ध दर्शन विभाग में प्राध्यापक की नियुक्ति पाने तक ज्ञानपीठ में कार्यरत रहे। उस

अवधि में उन्होंने अपने अथक परिश्रम और विद्वत्ता से उस संस्था की सर्वांगीण उन्नति में भरपूर योगदान दिया, अनेक श्रेष्ठ ग्रन्थों का प्रकाशन कराया। ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका 'ज्ञानोदय' के सुसम्पादन का श्रेय भी उन्हें रहा। सन् १९५९ ई. में उन्हें सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, में जैन दर्शन विभाग का प्राध्यापक होने का अवसर प्राप्त हुआ, किन्तु वह वहाँ अधिक योगदान नहीं कर सके। काल के क्रूर हाथों ने असमय उन्हें हमने छीन लिया। २० मई, १९५९ ई. की रात्रि ९.०० बजे अचानक पक्षाघात से उनका प्राणान्त हो गया। उस समय वह मात्र ४८ वर्ष के थे। अपने पीछे वह अपने दो प्रतिभाशाली सुपुत्र पद्मकुमार और अरविन्द कुमार छोड़ गये।

यद्यपि 'जैन दर्शन' और 'जैन न्याय' महेन्द्र कुमार जी के प्रिय विषय रहे। उनकी लेखनी अन्य विषयों और साहित्य की विविध विधाओं में भी साधिकार प्रवाहित रही। जैन प्रमाण व्यवस्था के प्रस्थापक भट्ट अकलंक देव (६२५-६७५ ई.) ने उन्हें विशेष रूप से आकर्षित किया और सन् १९३३ ई. में प्रज्ञाचक्षु पं. सुखलाल संघवी द्वारा सम्पादन-संशोधन कार्य में प्रवृत्त किये जाने के समय से ही महेन्द्रकुमार जी ने अकलंकदेव के लुप्त प्राय ग्रन्थों के उद्धार का संकल्प मन में ले लिया। फलस्वरूप अथक परिश्रम कर अकलंकदेव के स्वोपज्ञविवृत्ति सहित **'लघीयस्त्रय', 'न्याय विनिश्चय',** और **'प्रमाण संग्रह'** इन तीन ग्रन्थों को **'अकलंकग्रन्थत्रयम्'** नाम से सम्पादित कर सिंघी जैन ग्रन्थमाला, अहमदाबाद, से सन् १९३९ ई. में प्रकाशित कराने में सफल रहे। भारतीय ज्ञानपीठ के कार्यक्रमों में अकलंकदेव के ग्रन्थों के प्रकाशन को प्राथमिकता दिये जाने पर उन्होंने **'न्याय विनिश्चय'** का वादिराज (१०२५ ई.) कृत **'न्यायविनिश्चय विवरण'**,जिसमें पूर्व कृति का २० हजार श्लोकों में भाष्य किया बताया जाता है, के साथ पुनः सम्पादन कर सन् १९४९ ई. में भारतीय ज्ञानपीठ से **'न्याय विनिश्चय विवरणम्'** नाम से प्रकाशन कराया। यही नहीं, उन्होंने-अकलंक के **'तत्त्वार्थ राजवार्तिक'** का भी सम्पादन किया जो ज्ञानपीठ से सन् १९५७ में दो भागों में प्रकाशित हुआ। अकलंक की कृति **'सिद्धिविनिश्चय'** ने तो उन्हें ऐसा सम्मोहा कि उस पर उन्होंने डॉ. सूर्यकान्त शास्त्री के निर्देशन में सन् १९५६ ई. में अपना शोध-प्रबन्ध **"ए क्रिटिकल एडीशन ऑफ सिद्धिविनिश्चय टीका"** प्रस्तुत कर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से पी-एच.डी. उपाधि अर्जित कर ली। उपलब्ध एक मात्र प्राचीन हस्तलिखित प्रति से उक्त ग्रन्थ की मूल कारिकाओं और

ग्रन्थकार अकलंक की उस पर स्व वृत्ति का उद्धार करने के साथ ही पण्डित जी ने उस पर अनन्तवीर्य द्वितीय (८२५ ई.) की टीका का भी सम्पादन किया तथा अंग्रेजी और हिन्दी उभय भाषा में ग्रन्थकार और ग्रन्थ सम्बन्धी १६४ पृष्ठीय अपनी विशद सारगर्भित प्रस्तावना से उसे अलंकृत भी किया। उक्त सम्पादित ग्रन्थ दर्शन के सुप्रसिद्ध विद्वान महामहोपाध्याय डॉ. गोपीनाथ कविराज तथा उत्तर प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री डॉ. सम्पूर्णानन्द के प्राक्कथनों के साथ दो भागों में ज्ञानपीठ द्वारा सन् १९५९ ई. में प्रकाशित हुआ। इस ग्रन्थ की अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी सराहना हुई।

वर्णी ग्रन्थमाला, वाराणसी, से सन् १९५५ ई. में प्रकाशित उनकी कृति **"जैन दर्शन"** को उत्तर प्रदेश शासन से जैनदर्शन की श्रेष्ठतम कृति के रूप में पुरस्कृत होने का गौरव प्राप्त रहा।

उपर्युक्त के अतिरिक्त न्याय और दर्शन के क्षेत्र में उनकी उल्लेखनीय कृतियां हैं- **'प्रमेयकमलमार्त्तण्ड', 'प्रमाणमीमांसा',** और आ. हरिभद्रसूरि (७२५-८२५ ई.) कृत **'षड्दर्शन समुच्चय'** का सम्पादन। सन् १९५१ ई. में दिल्ली से सामयिक विषय पर उनकी कृति **'जैन मन्दिर और हरिजन'** प्रकाशित हुई थी।

अपनी अनथक साधना से जैन दर्शन एवं न्याय विषयक प्राचीन ग्रन्थों का उद्धार करने वाले और विद्वज्जगत में उनकी महत्ता अपनी कृतियों से प्रतिष्ठापित करने वाले डॉ. महेन्द्र कुमार जी की इस वर्ष ११ मई को ९७वीं जन्म जयन्ती और २० मई को ४९वीं पुण्यतिथि है। भले ही वह सशरीर नहीं हैं, उनका कृतित्व और यशकाया तो अमर है। उन सरस्वती साधक को इस अवसर पर हमारा सादर नमन् है।

**- रमा कान्त जैन**

---

मध्यकालीन भारतीय दर्शन के इतिहास में मीमांसकधुरीण कुमारिल और तार्किकचक्रचूडामणि बौद्धाचार्य धर्मकीर्ति की तरह स्याद्वादपञ्चानन तर्कभूवल्लभ भट्टाकलंकदेव भी युगप्रवर्तक आचार्य थे। जैन प्रमाणशास्त्र के व्यवस्थापक और प्रतिष्ठापक महान् ज्योतिर्धर थे। युग युग में ऐसे विरल पुरुष-पुन्नाग होते हैं जिनके बिना वह युग हतप्रभ और निरालोक कहा जाता है।

**- सिद्धिविनिश्चय टीका की प्रस्तावना से**

सम्पादकीय

# अस्वीकार का अधिकार

१ मई, २००८ का **'दैनिक जागरण'** पढ़ रहा था। दृष्टि निम्नलिखित समाचार पर जा पड़ी-

"बीत चुके महीने का अंतिम एक सप्ताह व्यावहारिक क्रान्ति की ओर तेजी से कदम बढ़ा रही आधी आबादी की युवा पौध के नाम रहा। छह दिनों में ११ बारातों को दुल्हनों ने वापस लौटा कर साबित किया कि दिन लदे जब उन्हें बछिया समझ कर उनकी पगहिया किसी के भी हाथ में माँ-बाप सौंप देते थे। इस बदलाव में रोचक यह रहा कि एक ओर जहाँ सामाजिक संस्कारों के बोझ तले दबे परिवार वालों ने बेटी को एक बार फिर समझा बुझाकर 'पगड़ी की लाज' की खातिर गठबंधन की रस्म पूरी करने का दबाव बनाया वहीं दूसरी ओर घर की चौखट से बेटी-बहुओं के कदम बाहर रखने पर एतराज रखने वाले गांव और पंचायत ने भी 'बहादुर बेटियों' के फैसले को सही ठहराते हुए उनका समर्थन किया।"

समाचार पत्र में कहाँ-कहाँ लौटाई गई बारात उसका भी विवरण दिया था, जो निम्नवत है-

'गोरखपुर में झंगहा क्षेत्र में दूल्हे की सूरत देख भड़की दुल्हन ने शादी से इन्कार कर दिया। साथ ही उसने चेतावनी दी कि अगर उस पर दबाव बनाया गया तो वह मौत को गले लगा लेगी।

गौतम बुद्ध नगर जिले के जहांगीरपुर गाँव में दुल्हन ने दहेज लोभी दूल्हे से शादी करने से इन्कार कर दिया।

अखिलेश बारात लेकर नवादा आ पहुँचा लेकिन रामऔतार की बिटिया ने बेरोजगार दूल्हे के संग फेरे लेने से इन्कार कर दिया।

निघासन में दहेज मांगने पर दुल्हन रेनू के परिवार वालों ने विवाह करने से इन्कार कर दिया। पंचायत ने भी वधु पक्ष का साथ दिया और बारात को बैरंग लौटना पड़ा।

देवरिया निवासी सुनैना ने बदमिजाजी दूल्हे के साथ जाने से इन्कार करते हुए विवाह की तैयारियों में हुए खर्च की मांग कर डाली।

कन्नौज से बारात लेकर कानपुर आये दूल्हे मियां को जयमाल के बाद मंच पर दोस्तों के साथ शराब का घूंट भरना महंगा पड़ गया और बारात हरजाने के रूप में डेढ़ लाख रुपये देकर लौट गयी।

अमेठी में आयोजित सामूहिक विवाह कार्यक्रम में पाँच में से चार जोड़े ही परिणय सूत्र में बंध सके क्योंकि कुड़वार की पिंकी गुप्ता ने सुल्तानपुर के अमित कुमार के शराबी होने का पता चलने पर शादी करने से मना कर दिया।

कफारा के धौरहरा क्षेत्र में यह पहली ऐसी घटना है जिसमें आठवीं जमात पास सुभाषिनी को दहेज की खातिर अपने बाप-भाई का वर पक्ष के सामने गिड़गिड़ाना नागवार गुजरा और उसने शादी से इन्कार कर दिया। इस मामले में पूरा कफारा गाँव सुभाषिनी के समर्थन में उतर आया।

हरदोई के पिहानी क्षेत्र की निवासी कल्पना ने अपने से दोगुनी उम्र के दूल्हे से शादी से इन्कार कर दिया। गाँव वालों ने भी लड़की की बात सही ठहरायी, जिसके चलते बिना दुल्हन ही बारात वापस ले जानी पड़ी।

तिलोई में सोमवार को धूमधाम के साथ अनिता की बारात आयी। शादी की रस्में पूरी होने के लिये मंडप में दूल्हा पहुँचा तभी बात बिगड़ गयी और कन्या पक्ष ने शादी ने इन्कार कर दिया। इसका कारण वर पक्ष चढ़ावे में जेवर कम लाया था।

औरैया के गाँव काकोर की विजयलक्ष्मी ने दहेज लोभी महेश से भरे मंडप में विवाह करने से इन्कार कर दिया।"

आज नारी जागरण का युग है। उपर्युक्त समाचार और उसमें वर्णित घटनाएं इस बात का स्पष्ट संकेत हैं कि इक्कीसवीं सदी की नारी, विशेषकर युवतियों की नई पौध, काफी साहसी है। उसमें अपने अधिकारों के प्रति काफी जागरूकता आ गई है। ग्रामीण अंचल की कम शिक्षित युवतियों ने भी अपना जीवन साथी पाने के सम्बन्ध में अपने **'अस्वीकार के अधिकार'** को अब पहचान लिया है और उसका प्रयोग आरंभ कर दिया है। उन्हें बदसूरत, दहेज लोभी, बदमिजाज, बेरोजगार, शराबी, अधिक उम्रवाला और चढ़ावा कम लाने वाला वर स्वीकार नहीं है और वे आयी बारात को लौटाने में सक्षम हैं तथा समाज भी उनका साथ देने को तैयार है। विवाह सम्बन्धों के सम्बन्ध में पुरातन पंथी सोच की दीवार अब टूटने लगी है और क्रान्ति कदम बढ़ा रही है।

प्राचीन काल में अपने यहाँ 'स्वयंवर' प्रथा थी। लड़कियों को अपना वर स्वयं चुनने का अधिकार था। कालान्तर में यह अधिकार छिन्न-भिन्न हो गया। माँ-बाप अपनी बेटी का विवाह जिस लड़के के साथ तय कर देते बेटी को उसी के साथ सारी उम्र बितानी पड़ती, भले ही दूल्हा उसकी रुचि के बिल्कुल विपरीत हो। मध्यकाल में मुसलमानी शासन के समय अपनी बेटियों को उन विदेशी आततायियों की कुनिगाह से बचाने हेतु कम उम्र में, नादान बाल्यावस्था में, ही बिना उनकी कोई मर्जी जाने, विवाह करने और कन्यादान करने की प्रथा चल पड़ी। नारी सशक्तिकरण के इस युग में पति-पत्नी के बीच आपसी तालमेल न बैठने की स्थिति में सम्बन्ध-विच्छेद अर्थात् तलाक लेने-देने की प्रवृत्ति में काफी बढ़ोत्तरी हुई है, किन्तु यह विवाहोपरान्त अस्वीकार की स्थिति है। आज शिक्षित-समझदार परिवारों में विवाह सम्बन्ध प्रायः लड़के-लड़की का पूर्ण विवरण और फोटो प्राप्त करने के उपरान्त ही करने का चलन हो गया है। तदपि जहाँ माँ-बाप द्वारा बेटी की इच्छा जाने बिना तथा वर और उसके परिवार वालों के बारे में पूरी सही जानकारी किये बिना सम्बन्ध तय कर दिये जाते हैं और विवाह के ऐन मौके पर कोई कमी प्रकाश में आने पर कन्या द्वारा उसे अस्वीकार किया जाता है, जैसा कि उपर्युक्त घटनाओं में हुआ है, वह एक स्वागत योग्य साहसी कदम है जिसके लिये उपर्युक्त सभी लड़कियां बधाई की पात्र हैं। उनका 'अस्वीकार का अधिकार' सराहनीय है।

गज़लकार जगजीत सिंह की एक गज़ल की पंक्ति है, "जब बात निकली है, तो दूर तलक जायगी।" यही बात कुछ-कुछ 'अस्वीकार के अधिकार' पर भी लागू होती है। आज प्रायः हर क्षेत्र में 'अस्वीकार के अधिकार' की आवश्यकता प्रतीत होती है। राजनीतिक क्षेत्र में जनतंत्र में देश और प्रदेशों के शासन की बागडोर जनता के प्रतिनिधियों के हाथ में रहती है। ये प्रतिनिधि कितने योग्य होते हैं, किसी से छिपा नहीं है। वोट बैंक की रणनीति में कैसे-कैसे धुरन्धर सत्तासीन हो जनता को मूर्ख बनाते रहते हैं, सभी जानते हैं। पर इन धुरन्धरों को विस्थापित करना टेढ़ी खीर है। जनता के हाथ में जहा वोट देने का अर्थात् जनता के प्रतिनिधि चुनने का अधिकार है वहीं उसे समस्त अयोग्य प्रत्याशियों को एक साथ ही नकारने अर्थात् अस्वीकार करने का अधिकार भी प्रयोग में लाना चाहिये ताकि सही हाथों में देश की बागडोर रहे।

सामाजिक संस्थाओं में भी स्वयंभू नेता छल-बल से उच्च पदों पर आसीन हो उन्हें अपनी मन मर्जी मुताबिक चलाते हैं और उनका बेड़ा गर्क करते रहते हैं और

उन संस्थाओं के सामान्य कार्यकर्ता कुछ बोल नहीं पाते। वहाँ पर भी संस्थाओं के सामान्य कार्यकर्ताओं, जिनके वोट के आधार पर नेता चुने जाते हैं, द्वारा अयोग्य नेताओं को अस्वीकार करने का अधिकार प्रयोग में लाना अभीष्ट है।

आर्थिक क्षेत्र में जो व्यवसायी जनता के साथ धोखा धड़ी करते हैं, मिलावटी माल या कम माल देते हैं, आवश्यकता से अधिक मुनाफा लेते हैं, उनके उत्पादों को अस्वीकार करने का अधिकार तो उपभोक्ता प्रयोग में लाते ही हैं।

आषाढ़ी पूर्णिमा से वर्षावास प्रारम्भ हो रहा है जब अपरिग्रही, वीतरागी जैन साधु-सन्त चार मास के लिये किसी एक नगर-बस्ती में स्थिरावास करेंगे और श्रावकगण को उनके सत्संग एवं धर्मोपदेश का लाभ उठाने का अवसर मिलेगा। कठोर चर्या का पालन करने वाले, ज्ञानाराधन द्वारा आत्म कल्याण करने और श्रावकों को सन्मार्ग दिखाने वाले ये तपस्वी साधु-सन्त श्रावकों द्वारा पंचपरमेष्ठि में परिगणित परम पूज्य होते हैं। इन साधु-सन्तों की आहार चर्या आदि में सहयोग करना सामान्य श्रावक अपना अहोभाग्य मानता है। यत्र-तत्र पत्र-पत्रिकाओं में साध्वाचार से इतर आचार वाले साधु-सन्तों के वृत्तान्त प्रकाश में आते रहते हैं। सभी साधु-सन्त साध्वाचार की कसौटी पर पूरे खरे उतरें, यह आवश्यक तो नहीं है। आखिर वे भी हाड़-मांस के मनुष्य हैं, उनमें भी कमी होना स्वाभाविक है। अस्तु जहाँ जिन साधुओं में आचार आदि की कोई कमी दृष्टिगत हो, उन्हें भी श्रावक पूज्य मानें, यह आवश्यक नहीं। मात्र इस भय से कि मुनि निन्दा महापाप है और ऐसा करने से वे नर्कगामी हो जायेंगे, उनके शिथिलाचार आदि के सम्बन्ध में श्रावक कुछ न कहें, मौन रहें, क्या यह उचित होगा, यह विचारणीय है।

शिथिलाचारी साधु-सन्तों से कठोर श्रमण चर्या का निर्वहन करने वाले साधु-सन्तों की छवि भी धूमिल होती है और श्रावकों की श्रद्धा भक्ति को भी आघात लगता है, यह निस्सन्दिग्ध है। अस्तु श्रावकों द्वारा शिथिलाचारी साधु-संतों को अस्वीकार किया जाना समय की मांग है।

हमारी अल्पबुद्धि में तो हर व्यक्ति को हर क्षेत्र में अयोग्य को अस्वीकार करने का अधिकार है।

**– रमा कान्त जैन**

---

**जैन गज़ट (साप्ताहिक, लखनऊ) अब इन्टरनेट पर भी उपलब्ध है** – Website : www.jaingazetteweekly. com

# समसगढ़-भोपाल का पुरातत्त्व

-डॉ. ज्योति प्रसाद जैन

गत अप्रैल मास के अन्त में विश्व जैन मिशन और अहिंसा, संस्कृति और जैन विद्या सम्मेलन के सिलसिले में भोपाल जाने का संयोग हुआ था। इसी प्रवास में एक दिन भोपाल के निकटवर्ती समसगढ़ के खंडहरों को देखने का सुयोग मिला।

भोपाल नवनिर्मित मध्य प्रदेश राज्य की वर्त्तमान राजधानी है। समुद्र की सतह से साढ़े सोलह सौ फुट की ऊँचाई पर, बलुआ पत्थर की एक समतल पहाड़ी पर यह नगर स्थित है। इसका क्षेत्रफल लगभग ११ वर्गमील और जनसंख्या सवा लाख है। विन्ध्याचल पर्वत की एक शाखा भोपाल नगर को मालवा उच्च भूमि से पृथक् करती है और नगर के उत्तर, पूर्व एवं उत्तर पश्चिम में उसी बलुआ पत्थर की अनेक पहाड़ियाँ यत्र-तत्र फैली हुई हैं।

भोपाल का मूलनाम भोजपालपुर रहा प्रतीत होता है। ११ वीं शताब्दी में धारा के सुप्रसिद्ध भोज परमार ने इस नगर को बसाया, इस स्थान के प्राचीन दुर्ग का निर्माण कराया और प्रसिद्ध भोपाल ताल खुदवाया कहा जाता है। मध्यकाल में गौंड राजाओं का राज्य इस प्रदेश पर रहता रहा। मुग़ल सम्राट औरंगजेब के अन्तिम दिनों में उसके एक पठान सर्दार दोस्तमुहम्मद खाँ ने विश्वासघात के बल पर इस राज्य पर अधिकार कर लिया था और गोंड रानी कमलावती ने अपने शील एवं प्रतिष्ठा की रक्षा करने के लिये महल की छत से कूद कर उक्त भोपाल ताल में जल-समाधि ले ली थी। तबसे लेकर देशी राज्यों के विलयन पर्यन्त भोपाल पर उक्त दोस्तमुहम्मद के वंशज नवाब राज्य करते रहे।

भोपाल में और उसके आस-पास परवार, गोलापूर्व, गोलालारे, खण्डेलवाल, ओसवाल आदि जैनों की अच्छी बस्ती है। स्वयं भोपाल में इस समय तीन दिगम्बर और एक श्वेताम्बर जैन मन्दिर हैं। नगर की प्रसिद्ध जामा मस्जिद भी किसी प्राचीन जैन मन्दिर को तोड़ कर उसके स्थान पर एवं उसी के मसाले से बनाई गई कही जाती है। एक अंग्रेज लेखक की साक्षी के अनुसार लगभग डेढ़ सौ वर्ष पूर्व भोपाल में एक नव-प्रतिष्ठित जैन मन्दिर पर आक्रमण करके उसे शैव मन्दिर बना लिया गया था।

भोपाल के आस-पास अनेक प्राचीन दर्शनीय स्थान हैं, यथा-सांची, उदयगिरि, रायसेन, भोजपुर, कुराना, मानुभांड का टेकरा, समसगढ़ आदि। इन सभी स्थानों में प्राचीन जैन मंदिर या अन्य जैन पुरातत्व पाये जाते हैं। सांची अपने बौद्ध स्तूपों के

लिये सर्व प्रसिद्ध है, कतिपय जैन स्मारक एवं शिलालेख भी संभवतया यहाँ हैं। विदिशा के निकट उदयगिरि की गुप्तकालीन जैन, वैष्णव एवं शैव गुफाएँ भी पर्याप्त प्रसिद्ध हैं। रायसेन के प्राचीन दुर्ग में जैन मंदिरों एवं मूर्तियों के भग्नावशेष बिखरे पड़े हैं। भोपाल से १८ मील दक्षिण-पूर्व में स्थित भोजपुर का प्राचीन शिवमंदिर दर्शनीय है। उस मंदिर के पीछे की ओर एक प्राचीन जैन मंदिर भी विद्यामान है, जिसमें एक विशाल खड्गासन तीर्थंकर प्रतिमा विराजमान है। भोपाल के पश्चिम में लगभग ८ मील की दूरी पर कुराना नामक स्थान में भी एक प्राचीन भग्न जैन मंदिर है। कुराना के मार्ग में ही, भोपाल से लगभग ३ मील पर 'मनुआभान का टेकरा' है। यह पहाड़ी भोपाल का उच्चतम बिन्दु है। इसके उपर एक जैन मंदिर स्थित है जिसमें किसी मुनि के चरण-चिन्ह बने हुए हैं।

किम्वदन्ती है कि मानू या मनुआ भान (भांड ?) एक जैन श्रावक था, जो बहरूपिये का व्यवसाय करता था। एक बार राजाज्ञा से उसे जैन मुनि का अभिनय करना पड़ा और फिर वह मुनि ही बना रहा। प्रायः ब्रह्मगुलाल जैसी ही कथा है। इसी पर्वत पर उक्त मुनिराज ने तपस्या की थी और यहीं उनका देहान्त हुआ था। पहले इस स्थान पर दिगम्बरों का अधिकार रहा बताया जाता है, किन्तु अब श्वेताम्बरों के अधिकार में है और वे लोग इन चरण-चिन्हों को मानतुंग सूरि के चरण-चिन्ह बताते हैं।

भोपाल से लगभग १० मील दक्षिणपूर्व में समसगढ़ नाम का एक टूटा-फूटा पाषाण निर्मित दुर्ग एक पहाड़ी पर स्थित है। मध्यकाल में वह किन्हीं गोंड सर्दारों की गढ़ी रहा बताया जाता है। इस गढ़ी के निकट ही ५-७ घरों का एक छोटा-सा गाँव है जो भोपाल के ही एक जैन सज्जन की जमींदारी है। इस गाँव को पार करके लगभग दो फर्लांग की दूरी पर एक समतल पहाड़ी के ऊपर जैन मंदिरों के भग्नावशेष फैले पड़े हैं। लगभग ३०-३५ वर्ष पूर्व भग्नावशेषों के स्तूपाकार टीले के ऊपर कुछ तीर्थंकर मूर्तियों के ऊपरी भाग दीख पड़े थे। जैन भाइयों ने वहाँ खुदाई की, और शनैःशनैः एक पंक्ति में विराजमान तीन उत्तुंग खड्गासन जिनप्रतिमाओं को समूची वेदिका सहित स्पष्ट कर लिया। वहीं के पत्थरों से गर्भगृह का तथा उसके आगे एक और कक्ष का निर्माण करके प्रतिमाओं को सुरक्षित कर दिया। छत के ऊपर तीन छोटे-छोटे शिखर भी बना दिये गये।

**तीनों प्रतिमाएँ** प्रायः अखण्डित, परिकर, प्रातिहार्य आदि से युक्त एवं मनोज्ञ हैं। **मध्य वाली प्रतिमा के** पाद पीठ के मध्य में वृषभयुगल उत्कीर्ण हैं, धर्मचक्र भी है, बाँयी

ओर शासनदेवी चक्रेश्वरी और दाँयी और यक्ष गोमुख स्पष्ट हैं। सौधर्म और ईशान इन्द्रों के रूप में दोनों ओर दो चौरी-वाहक खड़े हैं। ऊपरी भाग में प्रतिमा के इधर-उधर पुष्पवर्षा करते हुए गजयुगल, दुन्दुभिनाद करते हुए गंधर्व, नृत्य करती हुई अप्सराएँ, छत्र, भामंडल आदि दीख पड़ते हैं। सिंहासन के दोनों कोनों पर सिंह युगल बने हुए हैं। आदिनाथ की यह प्रतिमा लगभग १६ फुट ऊँची है। उसके दाँयी ओर वाली प्रतिमा लगभग १२ फुट ऊँची है और अज लांछन से १७ वें तीर्थंकर कुन्थुनाथ की प्रतीत होती है। बाँयी ओर वाली प्रतिमा भी उतनी ही ऊँची है और कमल सम्पुट लांछन से २१ वें तीर्थंकर नमिनाथ की प्रतीत होती है। यह दोनों प्रतिमाएँ भी उसी प्रकार अपने-अपने यक्ष-यक्षि, परिकर आदि से संयुक्त हैं। तीनों प्रतिमाएं सलेटी रंग के पाषाण से निर्मित हैं और उनकी चमकदार चिकनी पालिश अभी तक प्रायः जैसी की तैसी है। यह पत्थर उस स्थान के आस-पास पाये जाने वाले पत्थर से भिन्न जाति का है। वेदी का सिंहासन एवं ऊपरी भाग कलापूर्ण ढंग से निर्मित एवं अलंकृत है।

इस मंदिर के बाहर बाहिने कोने के निकट एक खण्डित यक्षिमूर्ति जमीन में धँसी हुई दीख पड़ी। ध्यान से देखने पर उसके पाद पीठ पर शिलालेख होने की आशंका हुई। साथी नवयुवक उस मूर्ति को भूमि में से निकालने के लिये जुट गये। दोपहर के लगभग १२ बज रहे थे, तेज धूप सिर पर पड़ रही थी, तो भी उसे निकालने के लिये सब ने उत्साह के साथ मिलकर लगभग एक घंटा घोर श्रम किया। किन्तु मूर्ति काफी भारी थी और गहरी धँसी हुई थी, निकल नहीं सकी । तथापि इतना स्पष्ट हो गया कि उस पर साढ़े पाँच पँक्तियों का लगभग एक फुट लम्बाचौड़ा नागरी लिपि में संस्कृत भाषा में अभिलेख उत्कीर्ण है। लेख बहुत कुछ त्रुटित था और मूर्ति की उस स्थिति में ठीक पढ़ने में नहीं आया--केवल प्रथम पंक्ति में '१२८८ वर्षे' स्पष्ट पढ़ा गया। अतएव इसमें तो सन्देह नहीं है कि यह प्रतिमा वि.सं. १२८८ (सन् ई. १२३१) की है, और संभवतया उक्त मंदिर के निर्माण, जीर्णोद्धार या किसी वेदी प्रतिष्ठा के समय की है।

मंदिर के चारों ओर लगभग आधा मील के क्षेत्र में प्राचीन भग्नावशेष फैले पड़े हैं, जिनमें पद्मासनस्थ एवं खड्गासनस्थ दोनों प्रकार की अनेक खंडित तीर्थंकर मूर्तियाँ, यक्ष-यक्षियों की मूर्तियां, तीर्थंकरपट्टों के अलंकृत शीर्षभाग, गजसिंहासन, द्वारों, तोरणों, स्तम्भों, छतों, दीवारों आदि के कलापूर्ण प्रस्तरांकनों से युक्त अनेक भग्नांश कहीं बिखरे, कहीं ढेर लगे पड़े हैं। रत्न-राशि हाथ में लिये कुबेर की भी एक सुन्दर मूर्ति मिली, दो-तीन अन्य शिलालेखों के आभास मिले। उन्ही जमींदार साहब और उनके सहयोगी युवकों ने इन भग्नावशेषों को सुरक्षा के लिये उन्हीं के पत्थरों से निर्मित

एक चार फुट ऊँचे परकोटे से घेर दिया है। भोपाल के भाईयों का कहना है कि भोपाल के चौक बाजार के बड़े दिगम्बर जैनमंदिर के चौक में लगे हुए अनेकों प्रस्तर स्तम्भ तथा अन्य कितनी ही सामग्री समसगढ़ के भग्नावशेषों से ही लाई गई है। स्थान अरक्षित रहने के कारण वहाँ से जो चाहता है पाषाण ढोकर ले जाता है, इस प्रकार वहाँ से न जाने कितनी सामग्री जा चुकी है।

समसगढ़ के उपरोक्त जिनमंदिर के दाहिनी ओर लगभग दो फर्लांग की दूरी पर एक अन्य विशाल देवमंदिर के भग्नावशेष फैले पड़े हैं, जिनके मध्य में एक प्राचीन पक्की बावड़ी है। यह बावड़ी 'पारस तलाई' या 'जैनों की बावड़ी' के नाम से प्रसिद्ध है।

भोपाल नगर के झिरनीवाले नवीन मंदिर में भी आदिनाथ की १५ फुट ऊँची एक प्राचीन खड्गासन प्रतिमा विराजमान है। इसी प्रतिमा के लिये सेठ फुन्दीलाल परवार ने एक नवीन वेदी का निर्माण एवं प्रतिष्ठा इसी अवसर पर कराई है। यह प्रतिमा भी ११वीं शती की बताई जाती है और प्रायः समसगढ़ की प्रतिमाओं जैसी ही है। इसी मंदिर में कृष्ण-पाषाण की भ. नेमिनाथ की भी एक पद्मासनस्थ मनोज्ञ प्रतिमा है, जिसे संवत् १२६४ (सन् १२०७ ई.) में किसी गृहपति (गहोई) वंशी श्रावक ने प्रतिष्ठापित किया था। यह दोनों प्रतिमाएँ तथा अन्य अनेक प्रतिमाएँ जो चौक बाजार और मंगलवारा के मंदिरों में विराजमान हैं सब उसी परमार-चन्देल काल और शैली की प्रतीत होती हैं, और समसगढ़, कुराना आदि के प्राचीन खंडहरों से ही लाई गई बताई जाती हैं।

समसगढ़ का मूलनाम समस्तगढ़, समस्तिगढ़ या श्रमणगढ़ रहा प्रतीत होता है। विक्रम की १३ वीं शती में धारा के परमार नरेशों-विंध्यवर्मा, सुभटवर्मा, देवपाल और जैतुगिदेव का क्रमशः मालवा पर शासन रहा है, और पूरी संभावना है कि भोपाल तक का प्रदेश उन्हीं के राज्य के अंतर्गत था। अतएव वि. सं. १२६४ की प्रतिमा सुभटवर्मा के राज्यकाल की और वि.सं. १२८८ की प्रतिमा जैतुगिदेव के राज्यकाल की होनी चाहिये। उसी काल में आचार्यकल्प पं. आशाधर (वि. सं. १२५०-१३०० लगभग) धारा के निकट नलकच्छपुर के अपने विद्यापीठ में अनेक गृहस्थ एवं मुनि शिष्यों सहित साहित्याराधना में संलग्न थे। उनका **प्रतिष्ठापाठ** भी वि. सं. १२८५ में रचा जा चुका था। संभव है कि समस्तगढ़ या श्रमणगढ़ के अनेक उपमंदिरों से युक्त उस प्राचीन जिनालय के विशाल भवन में भी एक जैन विद्यापीठ विद्यमान हो, और उसका कुछ सम्बन्ध पं. आशाधर जी के साथ भी रहा हो।

आशाधर **प्रतिष्ठा पाठ** की दृष्टि से इस स्थान की मूर्तियों के अध्ययन करने से, संभव है ऐसे भी कोई संकेत मिल जाँय कि ये प्रतिष्ठाएँ उसी ग्रन्थ के आधार से की गई थीं। इस बात की भी पूर्ण संभावना है कि परमारों के किसी गोंड सामन्त का उस काल में समस्तगढ़ पर शासन था और वह जैनधर्मावलम्बी था।

समस्तगढ़ की यह यात्रा हमने और जैन-मिशन के संचालक बन्धुवर कामताप्रसाद जी ने समस्तगढ़ के उक्त जमींदार साहब तथा गुलाबचन्द्र पांड्या, बाबूलाल जी आदि कुछ उत्साही युवकों के आग्रह पर उन्हीं के साथ गुरुवार, १ मई, १९५८ के प्रातः काल की थी। इस प्राचीन, प्रभूत किन्तु प्रायः अरक्षित जैनपुरातत्व को देखकर आश्चर्य भी हुआ और दुःख भी। इस प्रकार के न जाने कितने महत्वपूर्ण स्थल बीहड़, वनस्थलियों के बीच ऐसी ही विपन्नावस्था में उपेक्षित एवं अरक्षित पड़े हैं। जैन समाज में छः सात पुरातत्वज्ञ एवं खोजी विद्वान् विद्यमान हैं। यदि उन्हें लेकर एक पुरातत्व अनुसंधान समिति बना दी जाय और उसे प्राचीन जैनपुरातत्त्व की शोध-खोज, अनुसंधान, पर्यवेक्षण, निरीक्षण, संरक्षण आदि का भार सौंप दिया जाय तथा उस भार को वहन करने के लिये उपयुक्त साधन सामग्री जुटाने की व्यवस्था कर दी जाय तो आशा है कुछ वर्षों में ही इस दिशा में पर्याप्त ठोस कार्य हो जाय।

**[जैन सन्देश शोधांक २ (२० नवम्बर, १९५८) से उद्धृत]**

---

# कवित्त

"आनन्द को कंद किधों पूनम को चन्द किधों,
देखिये दिनन्द ऐसो नन्द अश्वसेन को।
करम को हरै फंद भ्रम को करै निकंद,
चूरै दुख द्वंद सुख पूरै महा चैन को।
सेवत सुरिंद गुनगावत नरिंद भैया,
ध्यावत मुनिंद तेह पावैं सुख ऐन को।
ऐसो जिन चंद करैं छिन में सुछंद सतौ,
ऐक्षित को इंद पार्श्व पूजों प्रभु जैन को।।"

उपर्युक्त कवित्त सत्रहवीं शती ईस्वी में मुग़ल बादशाह औरंगजेब के शासनकाल (१६५८-१७०७ ई.) में आगरा में रहे भक्त कवि भैया भगवतीदास की **'सुबुद्धि चौबीसी'** से है जिसमें उन्होंने २३वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ का स्तवन किया है।

# वीर शासन जयन्ती

-श्री अजित प्रसाद जैन

ईसा पूर्व ५५७ वर्ष की वैशाख शुक्ल १० के दिन का अन्तिम प्रहर, ऋजुकूला नदी के निकट जृम्भिक ग्राम के बाहर जीर्ण उद्यान के पास, श्यामक नामा गाथापति के खेत के किनारे लगे शाल वृक्ष के नीचे, महान साधक श्रमण वर्द्धमान महावीर शुक्ल ध्यान में लीन थे कि यकायक उनका अन्तर निर्मल केवलज्ञान के आलोक से दैदीप्यमान हो गया। उनके आत्मिक गुणों को आच्छादित करने वाले ज्ञानावरणादि सभी कर्मों का पूर्ण क्षय हो गया। उनके १२ वर्ष साढ़े ५ मास की कठोर मौन एकाकी साधना सफलीभूत हुई। वे परम वीतराग अर्हत् परमेष्ठी, जिन, आप्त, सार्व, प्राणिहितोपदेशी जगद्गुरू हो गये। उनका तीर्थंकर काल क्रिया रूप में प्रारम्भ होने का समय आया।

अनादि काल से परम्परा चली आ रही है कि तीर्थंकर महाप्रभु को जिस दिन केवलज्ञान की प्राप्ति होती है, उनकी प्राणिकल्याण की अति उत्कट भावना के परिणाम स्वरूप उनके भव्य समवशरण की रचना इन्द्रादिक देवों द्वारा उसी दिन की जाती है तथा भगवान का सर्व-हितकारी उपदेश होता है, धर्म-तीर्थ की स्थापना होती है। तीर्थंकर की दिव्य देशना कभी व्यर्थ नहीं जाती तथा एकाधिक भव्य जन संबोधि को प्राप्त कर भगवान के पाद मूल में संयम ग्रहण करते हैं, सर्व विरति महाव्रत धारण करते हैं।

भगवान महावीर के केवलज्ञान प्राप्ति के बाद भी जृम्भिक ग्राम के बाहर जीर्ण उद्यान में भगवान के भव्य समवशरण की रचना तो हुई, और भगवान उसमें बिराजे भी, लेकिन उनकी दिव्य ध्वनि प्रस्फुटित नहीं हुई क्योंकि इसमें जुटी परिषद अभाविता थी। उसमें भव्य मानवों, संयम ग्रहण करने योग्य मनुष्यों, की उपस्थिति न थी। भगवान ग्रामानुग्राम विहार करके पंच-शैलपुर राजगृह पहुँचे तथा विपुलाचल पर्वत पर विराजमान हो गये।

भगवान की दिव्य ध्वनि न खिरने से इन्द्र को चिन्ता हुई। अवधिज्ञान से उसने ज्ञात किया कि गणधर के अभाव में भगवान का उपदेश नहीं हो रहा है। उपयुक्त पात्र की खोज में लगे इन्द्र का ध्यान उस समय के प्रकाण्ड विद्वान इन्द्रभूति गौतम की ओर गया।

उन दिनों पावापुर नगर (मध्यम पावा) में आर्य सोमिल के द्वारा एक विराट यज्ञ का आयोजन किया हुआ था जिसका पौरोहित्य इन्द्रभूति गौतम सहित दस और वेदज्ञ महापंडित कर रहे थे। इन्द्र ने यज्ञ स्थल पर एक जिज्ञासु शिष्य के रूप में जाकर इन्द्रभूति गौतम से विनयपूर्वक अभिवादन करके कहा, "आचार्य! मेरे गुरू ने मुझे एक गाथा सिखाई थी तथा उसके बाद ही वे मौन में चले गए। उस गाथा का अर्थ मेरी समझ में अच्छी तरह नहीं आ रहा है। अतः आप कृपा कर समझा दीजिए।" इन्द्रभूति ने कहा, "कोई भी गाथा हो, अर्थ तो उसका मैं तुम्हें समझा दूंगा पर अर्थ समझ जाने पर तुम्हें मेरा शिष्यत्व स्वीकार करना होगा।" इन्द्र ने यह शर्त सहर्ष स्वीकार की तथा निम्न गाथा प्रस्तुत की-

**पंचेव अस्थिकाया, छज्जीवणिकाया महव्वया पंच।**
**अट्ठ य पवयणमादा, सहेउओ बंध-मोक्खो य।**

(षट्खण्डागम, पु. ६, पृ.१२६)

इंद्रभूति इस गाथा को सुनकर असमंजस में पड़ गये। उनकी समझ में नहीं आया कि पंच अस्तिकाय, षट् जीवनिकाय, पंच महाव्रत तथा अष्ट प्रवचन मात्राएं क्या हैं, वेद-उपनिषदों में तो इनका कोई उल्लेख मिलता नहीं। शिष्य वेशधारी इंद्र से उन्होंने कहा, "तुम मुझे अपने गुरू के पास ले चलो, मै उनसे शास्त्रार्थ करूँगा और फिर मैं तुम्हें इसका अर्थ समझाऊंगा।" इंद्र तो यह चाहते ही थे।

समवशरण के बाहर मान-स्तम्भ को दर्शन करते ही महापंडित इंद्रभूति गौतम का अपने अगाध ज्ञान का गर्व गलित हो गया। वे पूर्ण विनय के साथ भगवान के समक्ष उपस्थित हुए तथा उनसे अपनी सभी मनोगत शंकाओं का सम्यक् समाधान पा कर वे अपने शिष्य परिकर सहित प्रवृजित हो गये-भगवान के प्रथम शिष्य हुए, प्रथम गणधर हुए। यद्यपि इंद्रभूति गौतम विख्यात महापंडित थे तथा आयु में भगवान से १० वर्ष ज्येष्ठ थे, भगवान के ज्ञान के समक्ष वे अपने को सदा बालक ही मानते रहे।

उसी दिन आर्य सोमिल के यज्ञ की पुरोहिताई कर रहे अन्य दस महापंडित (अग्निभूति, वायुभूति, आर्य व्यक्त, सुधर्मा, मंडिन, मौर्य पुत्र, अकम्पित, अचल भ्राता, मेतार्य और प्रभास ) भी अपनी शंकाओं का सम्यक् समाधान पाकर अपने शिष्य परिकर सहित भगवान से प्रवृजित हुए। ये ग्यारह महापंडित भगवान के प्रमुख शिष्य एवं गणधर हुए। इस प्रकार एक ही दिन में ४,४०० भव्य आत्माओं ने जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण की। यह शुभ दिन आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा थी तथा लोक में यह गुरु पूर्णिमा के नाम से विख्यात हुई।

गुरु पूर्णिमा का पर्व जैन एवं जैनेतर धर्मावलम्बियों में भी गुरु भक्ति के लिए समर्पित है। मुनि दीक्षा व व्रत संयम ग्रहण करने के लिए यह सर्वोत्कृष्ट दिन आज भी माना जाता है। बालकों को विद्यारम्भ कराने के लिए यह दिन शुभ माना जाता है। अब से ७०-८० वर्ष पहले तक जैन पाठशालाओं में पंडित जी पाटी पर "ऊँ नमः" लिख कर बालक को विद्यारम्भ कराते थे जिसका प्रकारान्तर से अर्थ गणाधिपति श्री इन्द्रभूति गौतम को नमस्कार करना ही होता है।

आषाढ़ी पूर्णिमा के अगले दिन श्रावण कृष्ण प्रतिपदा के प्रातःकाल मनोरम विपुलाचल पर्वत पर इस अवसर्पिणी काल के अन्तिम तीर्थंकर जगद्गुरु सर्वज्ञ भगवान महावीर स्वामी अपने ग्यारह गणधरों सहित समवशरण में विराजमान हुए तथा उनकी सर्व जन हिताय प्रथम दिव्य देशना हुई जिसे गौतम आदि गणधर देवों ने अर्थ रूप में ग्रहण कर शब्द रूप द्वादशांग श्रुत निबद्ध किया। राजकुमारी चन्दना ने आर्यिका दीक्षा ग्रहण की और वे भगवान के आर्यिका संघ की प्रमुखा बनीं। मगधराज श्रेणिक भी सपरिवार एवं सामन्तों सहित भगवान का दिव्य उपदेश सुनने के लिए समावशरण में उपस्थित हुए तथा वे भगवान के मुख्य श्रोता हुए। अभय कुमार, शंख, शतक आदि ने श्रावक धर्म स्वीकार किया तथा महारानी चेलना, सुलसा आदि ने श्राविका के व्रत स्वीकार किये। इस प्रकार भगवान के चतुर्विध धर्म संघ की स्थापना हुई। धर्म तीर्थ की स्थापना हुई। धर्म-चक्र का प्रवर्तन प्रारम्भ हुआ।

भगवान महावीर स्वामी की प्रथम देशना के संबंध में श्वेताम्बर परम्परा थोड़ा भिन्न है। उसके अनुसार देवताओं ने वैशाख शुक्ल दशमी को ही केवलज्ञान स्थल के समीप भव्य समवशरण की रचना की। भगवान समवशरण में विराजे तथा उसमें मनुष्यों की उपस्थिति भी हुई, किन्तु उनमें सर्वविरति महाव्रत ग्रहण करने की क्षमता वाला कोई भव्यात्मा नहीं था। यह जानते हुए भी कल्प समझ कर भगवान ने कुछ देर उपदेश दिया किन्तु सर्वविरति रूप महाव्रत ग्रहण करने की दृष्टि से उस प्रथम देशना का परिणाम शून्य रहा। वह देशना अभाविता परिषद के समक्ष हुई थी। (दृष्टव्य, आचार्य गुणचन्द्रः **महावीर चरियम्**, प्रस्ताव ७)। यह एक अभूतपूर्व घटना थी क्योंकि तीर्थंकर का उपदेश कभी व्यर्थ नहीं जाता। इसे इस अवसर्पिणी का एक अछेरा (आश्चर्य) ही माना जाता है।

भगवान वैशाख शुक्ल दशमी को ही मज्झम-पावा पधार गए तथा नगर के बाहर महासेन वन में उनके भव्य समवशरण की रचना हुई। आर्य सोमिल के विराट यज्ञ

की पुरोहिताई कर रहे इन्द्रभूति गौतम आदि महापंडितों ने जब विशाल जन समूह को भगवान की वन्दना एवं उपदेश श्रवण के लिए समवशरण स्थल की ओर जाते देखा तो उत्सुकतावश तथा शास्त्रार्थ करने की इच्छा से वे भी वहाँ गए तथा अपनी मनोगत शंकाओं का सहज ही सम्यक् समाधान प्राप्त कर उन्होंने अपने विशाल शिष्य समुदाय सहित सर्वविरति रूप महाव्रत स्वीकार किए, भगवान का शिष्यत्व ग्रहण किया। अगले दिन वैशाख शुक्ल एकादशी को ही भगवान की प्रथम देशना हुई। उसके बाद भगवान साधु परिवार सहित ग्रामानुग्राम पद विहार करते हुए राजगृह पहुँचे तथा नगर के बाहर गुणशील चैत्य में विराजमान हुए। वहीं उनके भव्य समवशरण की रचना हुई तथा श्रावण कृष्ण प्रतिपदा को उन्होंने केवलि काल के अपने प्रथम चातुर्मास की स्थापना की।

भगवान का प्रथम चातुर्मास राजगृह में ही हुआ, इस पर दिगम्बर-श्वेताम्बर दोनों परम्पराओं में मतैक्य है, अन्तर केवल इतना है कि जहाँ दिगम्बर परम्परा समवशरण की रचना विपुलाचल पर्वत पर मानती है, जहाँ भव्य समवशरण मन्दिर का निर्माण हुआ है, श्वेताम्बर परम्परा राजगृह नगर के बाहर स्थित गुणशील चैत्य में मानती है जिस स्थल की पहचान कर स्व. उपाध्याय अमर मुनि जी ने सत्तर के दशक में वीरायतन की स्थापना की।

इस प्रकार अन्तिम तीर्थंकर सर्वज्ञ महाप्रभु भगवान महावीर के धर्म शासन का प्रारम्भ हुआ। धर्म चक्र का प्रवर्तन हुआ। भगवान धर्म चक्री हुए। पृथ्वी के चक्रवर्ती से आध्यात्मिक जगत के चक्रवर्ती का यश अनन्त गुणा अधिक होता है। जयति महावीर, जयति जिन शासन !

(**शोधादर्श** २६, जुलाई १६६६, से उद्घृत)

---

# श्री महावीर वचनामृत

**विणओ धम्मस्स मूलं**

धर्म का मूल विनय (मान रहित होना) है।

**विवेग्गे धम्म माहियं**

विवेक (सद् असद् विवेक ) में मनुष्यों का धर्म निहित है।

**जो पुण चरित्तहीणो किं तस्स सुदेण बहुएण**

जो व्यक्ति चरित्र से हीन है उसके बहुत से शास्त्रों के जानने से भी क्या लाभ है अर्थात् कोई लाभ नहीं है।

# Awakening among the Jains during 19th-20th centuries

- Dr. Shashi Kant

## Need of identity

After the British administration was established and the people from different communities started joining the government services in the later half of the 19th century, there was a sort of awakening among different sections of the Indian population to take education in government schools or other institutions imparting modern education and equip themselves for taking up jobs under the new set-up. The entrants to these services were posted in places which were far off from their normal place of residence and were thus scattered all over India. In such circumstances they needed a sort of social association with the local inhabitants as well as with other service people coming from different parts of the country. Thus the question of identity emerged. This identity could be within the same caste or with the co-religionists.

The members of the society professing Jain religion were not so numerous and they needed to protect their identity. First of all, it was a question of Jains joining together irrespective of their sectarian affiliations. But, later on, the associations became sect based as the Digambar Jain Mahasabha, Shvetambar Jain Mahasabha, and Sthanakvasi Jain Mahasabha, etc.

Towards the close of the 19th century among the educated Jains who had taken modern education, a consciousness developed that they should suffix 'Jain" or "Jaini' to their names so that their identity would be apparent. This was more in evidence in Delhi, Western U.P. (United Provinces of Agra and Oudh), Central Provinces and parts of Rajasthan. In other parts of the country the people continued to suffix caste or *gotra* name to their personal name, but they also joined the efforts for forming social organizations

## Presentation of Jainism

Early in the 20th century there was also a growing awareness

among the educated Jain youth that Jainism should be properly presented. Thus began the modernist study of the Jain scriptures and religious treatises and other literature. It was also felt that Jainism as a system should be taken due notice of by the Western scholars, and translations or explanatory literature should also be published in English so that its merit may be evaluated *at par* with other systems of Indian religion and philosophy. A series of the *Sacred Books of the Jains* was published in 1920's-30's. The *English Jain Gazette* was also brought out during 1904-51.

Side by side reformist movements also emerged and a concerted effort was made to bring out Jain works in print. The social customs were also reviewed and social reforms were introduced by some enlightened men and women in the society. Whoever put up a reformist line of action, was snubbed by the reactionary conservatives who would not look out of their limited horizon.

## Social organizations

Among the social organizations may be mentioned the Jain Young Men's Association which was formed towards the close of the 19th century and which wanted to bring all the educated Jains on one platform. A Jain Political Conference was also held in the 2nd decade of the 20th century. The purpose of this Conference was to project the importance of the Jain community in the social, economic and political life of India and to impress upon the Government to give due weightage to the Jains in services and other official outfits.

Local Jain groups were organized under the name of Jain Mitra Mandal in the 1920's-30's and of them the Jain Mitra Mandal of Delhi was quite prominent. The major reformist organization among the Digambar Jains was the All India Digambar Jain Parishad which was founded in early 1920's.

With a view to acquaint the western world about Jainism and also to provide a sort of social organization for the Jains living abroad, an attempt was made in the form of World Jain Mission in the 1950's. Later, the Ahimsa International was formed in 1973 and, further, the World Jain Congress was organized in

1985 with a view to bring together the adherents of Jainism living abroad. Some time in 1980 the JAINA was formed in the United States of America to forge a sense of unity among the Jain diaspora. These organizations sought to cover all Jains of all sectarian denominations.

Within India also a consciousness developed that all Jains should meet on one platform forgetting their sectarian allegiances. The Bharatiya Jain Milan was formed in 1960's with such an aim. The Tirthankara Mahavira Smriti Kendra Samiti, Uttar Pradesh, was established in 1976 at Lucknow which, through its research library and research journal *Shodhadarsha,* has been an active proponent of researches in Jainology covering all denominations.

## Progress and retrogress

For a systematic study of the Jain scriptures the Syadvada Vidyalaya was founded in Varanasi early in the 20th century. A Central Jain Oriental Library was established in Arrah for collecting and cataloguing Jain manuscripts, and a research Journal in English under the name of *Jaina Antiquary* was also published from there. There were, however, a number of periodicals in Hindi, Gujarati, Marathi, Kannad, Tamil and other regional languages, belonging to different sects, some of which were also devoted to furthering studies and research in Jainology, while most of them devoted themselves to the organizational problems of the concerning sects or groups. During the later half of the 20th century a number of Research Institutes, as also educational institutions, were founded in different parts of the country by members of the Jain community. Whereas there has been an effort to create social awareness and educate the community about the drawbacks and backwardness of some of the social customs and religious practices, there has also been, unfortunately, an upsurge in retrogressive trends with the blessings of some of the religious pontiffs, as is with other sectarian or denominational religions. The tragedy is that the community at large is unable to take a stand gainst these trends, and the progressive and enlightened are sh , of expressing their opinion.

## In the mainstream

All through early half of the 20th century the Jain youth was drawn to the nationalist movement. Some fire-brands joined the revolutionary groups against the British Government and some of them also spearheaded popular uprising in the Indian States against the autocratic rule of local rulers. Some of them faced bullets and were sentenced to capital punishment and transportation to the Cellular Jail in the Andamans. Great many took part in the freedom movement under the Indian National Congress, and suffered imprisonment and privations. Thus the Jain community though numerically small, was always in the mainstream of national life. Its enterprising members also soon got over the taboos against oversea journeys and went abroad in pursuit of trade and studies.

## Since Independence

Since independence the Jain community has been active in the social, economic and political life of the country, as well as in making India proud abroad, in a greater measure in proportion to its numerical strength.

In the political life mention may be made of the late Ajit Prasad Jain who was Food Minister in Government of India, the late Prakash Chand Sethi who was Chief Minister of Madhya Pradesh and later Home Minister at the Centre, and the late Takhat Mal Jain who was Chief Minister of Madhya Bharat. The Jains are members of different political parties and some of them are holding important organisational positions. Their presence in the political outfits shows that the Jain society as a whole is not dormant or passive. It is, however, a personal matter for the individuals joining the different political parties and it has no relevance, apparently, to their allegiance to the Jain faith or social benefits for the Jains as a whole.

In the economic field the Jains have made significant mark in industry, corporate life and commercial activities. The businessmen among the Jains are not a section apart, but they indulge in all sorts of business deals and practices as the other business people in India indulge in.

The participation of the Jains in the administrative, defence and other services is also quite significant. The rate of literacy is quite high, for the females also. There are Jains in the I.A.S., I.P.S., Railways, Engineering, Judicial, Banking and other Central and State services due to their proficiency in Higher Education.

Their representation in various professional disciplines such as Medicine, Law, Education, Accounts, Engineering, Information Technology, and Journalism, is also quite significant.

It would be relevant to note here the names of some of the illustrious personages in the field of learning. Dr. Daulat Singh Kothari (1906-1993) is noted for his valuable contribution in the field of education, Dr. Vikram Ambalal Sarabhai (1919-1971) in the field of science, Dr. Jyoti Prasad Jain (1912 - 1988) in the field of historical studies, Dr.Adinath Neminath Upadhye (1906-1975) and Dr. Hira Lal Jain (1899-1973) in the field of Prakrit and Apabhramsa studies, and Pt. Kailash Chand Shastri (1903-1987), Pt. Jugal Kishore Mukhtar (1877-1968), Pt. Sukha Lal Sanghvi (1880-1978) and Muni Jina Vijaya in the field of Jain religion and philosophy.

जैन जागरण के अग्रदूत by Mr. Ayodhya Prasad Goyaliya (1952), भगवान महावीर स्मृति ग्रन्थ (खण्ड 6 – उत्तर प्रदेश और जैन धर्म) (1975) and प्रमुख ऐतिहासिक जैन पुरुष और महिलाएं (1974) by Dr.Jyoti Prasad Jain, **Progressive Jains of India** by Mr. Satish Kumar Jain (1975), स्वतंत्रता संग्राम में जैन by Dr. Kapoor Chand Jain & Dr. Jyoti Jain (2003), and 20वीं शताब्दी की जैन विभूतियां by Mr. Mangilal Bhutoria (2004), may be referred for information about some of the notable men and women of the Jain society who contributed substantially in various fields since 1857. The **Souvenir of the 6th World Jain Conference,** (December 24-26, 1995), may be referred for information about the Jains abroad, and for Jain associations/centers in the U.S.A., Canada, Britain, Germany, Africa, Nepal, Singapore and Dubai. A brief introduction of the scholars contributing to studies in Jainology may be gathered from the सारस्वत मनीषी published by the मटेश्वर बाहुबली स्वामी महामस्तकाभिषेक महोत्सव समिति in 2006, as well as the सम्पर्क published by the तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत महासंघ हस्तिनापुर, in 2000.

The latter also gives a list of Jain journals and periodicals, as also of some Jain research institutes. Since 1986 the important events and personalities, pertaining to the Jains, have been referred in the शोधादर्श, published by the Tirthankara Mahavira Smriti Kendra Samiti, U.P., Lucknow.

**Role ahead**

The endeavour here is to present an overview of the participation and contribution of the adherents of Jainism in various fields of national and international activity during A.D. 1857-2007. Under the British imperialist scheme of things there was a calculated move to divide the Indian society and the Jains, although they could assert their identity, also fell a prey to it. Nearly all the leaders of the society during the British rule were either the title-holders or otherwise enjoying the grace of the British Government. They, therefore, wittingly or unwittingly, supported the nefarious design of the British authorities to isolate them from the mass of the Indian society. Jain Law was also invented to push the theory of separatism of the Jains, and a lone inscription in a South Indian temple was repeatedly flashed to ingrain a feeling of insecurity among the Jains.

Since 1947, after independence, there has been a move among some sections of the Jains to keep up the isolation as a minority. In the Indian conditions, as at present, minority is synonymous with Muslims who have an other nation's outlook. The Jains form an integral part of the non-Muslim and non-Christian Indian society which is generally called **Hindu** and is basically the vast **Bharatiya Samaj** or **Rashtra.** There are so many systems of philosophy and ritual forming the basics of the Indian cultural milieu. The Jain system of religion and philosophy is independent of, as well as, integrated with, the other Indian systems of religion and philosophy. But the social set-up is in many ways homogenous with the rest of the so-called Hindu society. Marriages take place between Jain and non-Jain Hindu families of the same caste. Social interaction is common, and many customs are also followed universally. The basic difference pertains to the tenets, rituals, places of worship, places of pilgrimage, traditional lore, sacred literature,

articles of faith, worshipful personages, and the monastics, which all together give the adherents of Jainism a distinct individuality,

It must be clearly understood that the minority isolation can hardly benefit the adherents of Jainism as a whole, although it may give some political or social advantage to a few self-seeking individuals. In the ultimate the isolated Jains may end up as pawns in the murky vote-bank politics. It is imperative in the self-interest of the Jains as a whole that they put up a united front against the divisive forces threatening the country, albeit keeping their identity and individuality intact as it had been during the historical times from the days of Mahavira till the imperial design of divide and rule promoted segregation and isolation of the Jains. Temples and statues would be reduced to rubble in course of time, and the myopic superstitions perpetrated by the self-engrossed members of monastic institutions may try to drag the society backwards, unless the enlightened younger generation resolves to keep the Jain society thriving in the mainstream of national life with open mind responsive to the demands of the time. Demands for a separate Jain Law or Jain Civil Law and a Jain Marriage Act are ludicrous, to say the least.

-Jyoti Nikunj, Charbagh, Lucknow

---

# पारदर्शी दोहे

रिश्तों में छोटे सभी, माँ से बड़ा न कोय।
सत्य 'पारदर्शी' सुनो, माँ बिन जन्म न होय।।१।।
श्रद्धा रख जो नित करे, गुरु-गरिमा-गुण-गान।
शिष्य 'पारदर्शी' बने, सद्गति निश्चित मान।।२।।
धर्म समन्वित आचरण, हरते जन की पीर।
मनुज 'पारदर्शी' वही, बन जाते महावीर।।३।।

**-श्री ऊँ. प्रकाश डाँगी 'पारदर्शी'**
**पारदर्शी साधना केन्द्र, २६१, उत्तरी आयड़, उदयपुर**

# हिंसाबहुल समाज में अहिंसा की भूमिका

- साहित्य वाचस्पति डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव

आज विश्व में जीवन के प्रत्येक स्तर पर हिंसा का बोलबाला है। कोई भी समाचार-पत्र उठाइए, उसके मुखपृष्ठ से आखिरी पृष्ठ तक हिंसा की खबरों के विभिन्न रूप दृष्टिगत होंगे। ऐसी स्थिति में महात्मा महावीर की अहिंसा की भूमिका महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकती है। हिंसा के कारण ही समाज का सही निर्माण नहीं हो पा रहा है। सही समाज के निर्माण के लिए अहिंसा आवश्यक तत्त्व है। अहिंसा शस्त्र-त्याग की अनुमति नहीं देती, वरन् सही शस्त्र-प्रयोग का विवेक प्रदान करती है। महावीर के अहिंसा-सिद्धान्त के समर्थक महात्मा गान्धी के अहिंसावाद की दृष्टि से विचार करें तो स्पष्ट होगा कि आपात स्थिति में हिंसा आवश्यक हो जाती है। उनकी अहिंसा कायरपन का पर्याय नहीं है। उन्होंने पातिव्रत्य-धर्म की या शील की रक्षा के लिए शस्त्र प्रयोग की अनुमति दी है।

अहिंसापुरुष महावीर ने हिंसा के चार प्रकार माने हैं-आरम्भी हिंसा, उद्योगी हिंसा, विरोधी हिंसा एवं संकल्पी हिंसा। कृषि कार्य में हल से खेत जोतने में होने वाली हिंसा आरम्भी हिंसा है। फिर, कल-कारखानों के संचालन में होने वाली हिंसा उद्योगी हिंसा है। पुनः युद्धकार्य में, राष्ट्र-रक्षा के लिए सेनाओं में की जाने वाली शत्रुओं की हिंसा विरोधी हिंसा है। किन्तु मानसिक स्तर पर संकल्प में रहने वाली हिंसा संकल्पी हिंसा है। इनमें प्रारम्भ की दो हिंसाएं-आरम्भी और उद्योगी, गृहस्थों के लिए वर्जित नहीं हैं, क्योंकि कृषि और उद्योग के बन्द हो जाने से मनुष्य की देह-यात्रा या संसार-यात्रा असम्भव हो जायेगी, जिससे मानव के जीवन जीने की प्रक्रिया ही समाप्त हो जायेगी और संसार का अस्तित्व ही विपन्न हो जायेगा।

राष्ट्र की रक्षा के लिए विरोधी हिंसा की भी अपनी सीमा में सार्थकता है। किन्तु संकल्पी हिंसा तो सर्वथा ही वर्जित है। मन का हिंसामूलक संकल्पी भाव-प्रत्यय ही कालान्तर में द्रव्य-प्रत्यय के रूप में परिणत होकर हिंसा का ताण्डव मचा देता है। आज संसार में हिंसा का जो लोमहर्षक ताण्डव हो रहा है, वह संकल्पी हिंसा का ही जघन्य परिणाम है।

असत् संकल्प से ही मन में अमर्ष अथवा हिंसाभाव पैदा होता है। और, वही क्रमशः क्रोध के रूप में परिणत होकर हिंसक कार्य का रूप ले लेता है। बड़े-बड़े

विश्वयुद्ध अथवा आधुनिक समाज में व्याप्त साम्प्रदायिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक और पारिवारिक स्तर की हिंसा के अनेक रूपों के मूल में संकल्पी हिंसा, यानी संकल्प जनित हिंसा की ही मुख्य भूमिका रहती है। संकल्प में जब तक अहिंसा-भावना को स्थान नहीं मिलेगा, तब तक हिंसा का ताण्डव मचता रहेगा।

अहिंसा का अर्थ सामान्यतः हिंसा न करना माना जाता है। यद्यपि अहिंसा का प्रसार हिंसा के प्रति घृणा से ही सम्भव है। संसार के सर्वजन के हित के लिए मन, वचन और काय से प्रयत्नशीलता अहिंसा-तत्त्व है। अहिंसा पारस्परिक प्रेम और सहकार का भाव है। भाव-विशुद्धि के साथ प्रेम करना ही अहिंसा है। अधुना भाव-विशुद्धि का घोर अभाव हो गया है। भाव-विशुद्ध रहने पर बाहरी आडम्बर (दिखावा) की आवश्यकता नहीं होती। अगर दिखावा है, पर भीतरी शुद्धता नहीं तो दिखावा भी व्यर्थ है। आज के सारे असत्कर्म-लूट, अपहरण, बलात्कार, हत्या आदि भाव की शुद्धि के अभाव के ही कारण हो रहे हैं।

"अहिंसा परमो धर्मः' इस श्रुति वाक्य के अनुसार भारत में अहिंसा को सर्वश्रेष्ठ धर्म माना गया है। अहिंसा का अर्थ ही है-हिंसाका सर्वथा परित्याग। अर्थात्, मन, वचन और कर्म से हिंसा का परित्याग करना ही अहिंसा है। मन से अहिंसक होने से ही अहिंसा-व्रत का सही रूप से पालन किया जा सकता है। भगवान् महावीर ने मन के स्तर पर अहिंसक होने का उपदेश किया है। इस सन्दर्भ में उन्होंने 'समिति' शब्द का प्रयोग किया है। 'समिति' सदाचार का ही पर्याय है। अगर आपके चलने-फिरने, बैठने-उठने आदि की क्रियाओं से किसी का मन दुःखी होता है, तो वह हिंसा है। इसी प्रकार आपके बोलने से सुनने वाले को कष्ट होता है, तो वह हिंसा है। कोई वक्ता श्रोता के मन-मिजाज की परवाह किये बिना लगातार बोलता चला जाता है, और उससे श्रोता के मन में कष्ट का अनुभव होता है, तो वह भी हिंसा है। आजकल अनेक वक्ता इस प्रकार की हिंसा बराबर करते हैं।

महावीर की परम्परा में गान्धी ने भी नैतिक दृष्टि से अहिंसा पर विचार किया है। इसलिए, वह जीवन में सदाचार को अधिक मूल्य देते थे। हिंसा की स्थिति आने पर उसे निराकृत करने के लिए अपनी विवेक-बुद्धि का सहारा लेना चाहिए। एक दृष्टान्त है कि एक बार किसी व्याध के तीर से आहत एक हिरण किसी मुनि के आश्रम में घुस आया। शिकारी अपने शिकार को ढूँढते हुए मुनि के आश्रम में पहुँचा और उनसे अपने शिकार के अर्पण की बात की।

मुनि सोचने लगे, अगर मैं सच बोलता हूँ, तो एक प्राणी नाहक मारा जायगा। अगर इन्कार करता हूँ, तो मिथ्या भाषण का अपराध होगा। सोच-विचार के बाद मुनि बोले- "मेरी जिस इन्द्रिय ने तुम्हारे शिकार को देखा है, वह बोल नहीं सकती और जो इन्द्रिय बोल सकती है, उसने देखा नहीं है। इसलिए, अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए आतुर ऐ व्याध ! तू क्यों बार-बार अपने शिकार के बारे में पूछता है ?" अन्त में, व्याध निराश होकर वापस चला गया और इस प्रकार हिरण की जान बच गई।

प्रसिद्ध जैनागम **'लाटी संहिता'** में इस बात का उल्लेख है कि अगर झूठ बोलने से किसी की प्राण-रक्षा होती है, तो वह झूठ नहीं, सच है और अगर सच बोलने से किसी की हिंसा या वध हो जाता है, तो वह सच नहीं, झूठ है। उक्त संहिता का मूल वचन है-

**असत्यं सत्यतां याति क्वचिज्जीवानुरक्षणात्।**
**सत्यं असत्यतां याति क्वचिज्जीवानुहिंसनात्।।**

निष्कर्षतः, हिंसा की जघन्यता के निवारण के लिए मन में अहिंसा-भावना का अन्तर्निवेश अतिशय आवश्यक है। साथ ही, प्रत्येक व्यक्ति का मन से अहिंसावादी होना अपेक्षित है। आज हिंसा के निर्मूलन के लिए मन के स्तर पर अहिंसा की भूमिका अपनाना अधिक महत्त्व रखता है।

इस सन्दर्भ में यह शास्त्र-वचन स्मरणीय है-

**सव्वे जीवा वि इच्छंति जीविउं न मरिज्जिउं।**
**तम्हा पाणबहं घोरं सव्वहा परिवज्जये।।**

अर्थात् सभी जीव जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता। इसलिए घोर पाप-स्वरूप प्राणिवध का सर्वथा परित्याग कर देना चाहिए।

**-३७, भारतीय स्टेट बैंक आफिसर्स कॉलोनी,**
**काली मन्दिर मार्ग, हनुमाननगर**
**कंकड़बाग, पटना-८०० ०२०**

---

## आभार

**डॉ. शशिकान्त-रमाकान्त जैन**, ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ ने अपने पिताजी इतिहास-मनीषी (स्व.) डॉ. ज्योति प्रसाद जैन की २०वीं पुण्य तिथि पर उनकी स्मृति में **शोधादर्श** को रु. ५१/- भेंट किये।

# आगमिक तथ्यों के आलोक में जलाभिषेक बनाम पंचामृत अभिषेक

- डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल

तीर्थंकर भगवंतों के पाँच कल्याणक मनाए जाते हैं। जन्म कल्याणक के समय इन्द्राणी प्रसूति गृह में जाकर मायामयी बालक रखकर तीर्थंकर बालक को सौधर्म इन्द्र को उल्लास पूर्वक लाकर देती है। सौधर्म इन्द्र ऐरावत हाथी पर बैठा कर बालक को सुमेरु पर्वत पर ले जाता है। वहाँ पांडुक शिला पर विराजमान कर १००८ कलशों से सौधर्म-ऐशान इन्द्र और देवतागण क्षीर सागर के पावन जल से बालक का जन्माभिषेक करते हैं। तपकल्याणक के समय देवों द्वारा जल से महाभिषेक के बाद की सब क्रियाओं में अभिषेक होने/करने का कोई विधान नहीं है। समवशरण में भी अभिषेक नहीं किया जाता। मुनिराज अ-स्नान व्रत-धारी होते हैं। निरतिचार २८ मूलगुण पालते हैं। ज्ञान-ध्यान तप में लीन रहते हैं।

श्रावक के आठ मूल गुण मुख्य हैं। मद्य, मांस, मधु का त्याग और पंच उदम्बर फलों का त्याग होता है। इसके बिना श्रावक की भूमिका ही नहीं होती। श्रावक के कुछ आवश्यक कर्तव्य भी हैं। **रयणसार** के अनुसार चार प्रकार का दान और देव शास्त्र गुरू की पूजा करना श्रावक का मुख्य कर्तव्य है। (गाथा ११) ! **कषाय पाहुड** में दान, पूजा, शील और उपवास को श्रावक का कर्तव्य बताया है। (८२/१००/२) ! आचार्य पद्मनंदि ने **पंचविंशतिका** में जिनपूजा, गुरु की सेवा, स्वाध्याय, संयम, तप और दान इन छह कार्यों को गृहस्थों के आवश्यक कार्य माना है। जिन पूजा का बहुत महत्व है। यह अष्ट द्रव्य से की जाती है। जो विवेकी जीव भावपूर्वक अरहंत को नमस्कार करता है वह अति शीघ्र समस्त दुखों से मुक्त हो जाता है (**मूल आचार** ५०६) ! जिन बिम्ब के दर्शन से निधत्त और निकाचित रूप भी मिथ्यात्वादि कर्म कलाप का क्षय देखा जाता है (**धवला** ६/१-६-६, २२/४२७/६) ! योगीन्दु देव के अनुसार तीर्थों में देवालयों में देव नहीं हैं, जिनदेव तो देह देवालय में विराजमान हैं (**योगसार** ४२/१)।

जिनेन्द्र देव की पूजा के पूर्व प्रतिमाओं के प्रक्षाल एवं अभिषेक करने की परम्परा है। अभिषेक प्रासुक जल से प्रायः किया जाता है। कहीं-कहीं परम्परानुसार जल, इक्षुरस, घी, दुग्ध और दही के द्वारा भी किया जाता है, इसे पंचामृत अभिषेक कहते

हैं। प्रस्तुत आलेख में जलाभिषेक एवं पंचामृत अभिषेक की परंपरा और उसके औचित्य पर, आगम के आलोक में, तथ्यों का प्रकाशन है जिससे कि विज्ञ-शोधार्थी मनीषी सम्यक् निष्कर्ष ग्रहण कर सकें।

राष्ट्र संत पू. आचार्य श्री विद्यानंद जी मुनिराज का आलेख **'जिनार्चना के अंगः जलाभिषेक और अष्ट द्रव्य'** सामने है। यह आलेख **जैनबोधक, समन्वयवाणी** (१-१५ दिस., ०६) एवं **वीर**, मई ०७ में प्रकाशित हुआ है। आचार्य श्री ने इस आलेख में निम्न दो निष्कर्ष ग्रहण किये हैं-

**"१. पंचामृत अभिषेक वैदिक संस्कृति में :**

....डॉ. वासुदेव उपाध्याय आदि इतिहास-संस्कृति के ज्ञाता विद्वानों के विचार में वैदिक परम्परा में देवताओं को पंचामृत स्नान (अर्थात् जल, इक्षुरस, घी, दही, दूध के मिश्रण से स्नान) कराने की प्रथा का आगमन संभवतः ई. छठी शती या इसके बाद हुआ। इस सम्बन्ध में अधिकाधिक अन्वेषण की आवश्यकता है।

**२. जलाभिषेक की प्राचीनता-**

जिनपूजा में मूर्ति का जलाभिषेक किए जाने की परम्परा अति प्राचीन मानी जाती है। अभी कुछ पुरातात्विक अवशेष भी मिले हैं जो उक्त तथ्य की पुष्टि करते हैं। ऋषभ पुत्र बाहुबली की प्राचीन राजधानी पोदनपुर (तक्षशिला) पेंशावर (पाकिस्तान) में है, वहाँ एक जिनमूर्ति की प्रतिच्छवि में श्रावकों को जिनमूर्ति पर जलाभिषेक करते हुए देखा जा सकता है।✦ श्रावकों ने बिना सिली हुई धोती पहिन रखी है और अंग पर अन्य कोई वस्त्र नहीं है। यह मूर्ति दूसरी शती पूर्व की है और इसकी प्राचीनता के आधार पर भारत या बाहर देशों में जिनपूजा के अंतरगत किये जाने वाले जलाभिषेक की प्राचीनता सिद्ध की जा सकती है।"

उक्त आलेख को जब से पढ़ा मन में यह भावना रही कि पंचामृत अभिषेक की आगमिक परम्परा की जानकारी प्राप्त की जाये। पुण्य योग से मुनि श्री भूतवली सागर जी द्वारा संकलित **'सम्यक् श्रामण्य भावना'** मिली। इस कृति के पृष्ठ १८७-२०२ में **श्रावकाचार संग्रह** (तीन भाग) के आधार पर पंचामृत या जलाभिषेक का आगमिक

---

✦किसी जिनमूर्ति की प्रतिच्छवि को देख कर ही कैसे यह अनुमान किया जा सकता है कि उस पर जल से अभिषेक किया जा रहा है अथवा किसी अन्य द्रव्य से, यह विचारणीय है। - सम्पादक

विवरण एवं समीक्षा प्रस्तुत की गयी है। अन्वेषण कर्ताओं को यह जानकारी उपयोगी सिद्ध होगी। अतः सहज भाव से सम्यक् निर्णय हेतु प्रस्तुत है विज्ञजन निष्पक्ष भाव से विचार करें।

१. ईसा की दूसरी शती में आचार्य उमास्वामी के शिष्य आचार्य समन्तभद्र हुए। आप महाकवि एवं महावादि थे। आपने **रत्नकरण्ड श्रावकाचार** की रचना की। आपने शिक्षाव्रत अधिकार में वैयावृत्य के अंतरगत श्लोक ११९ में जिनेन्द्र पूजन का उपदेश दिया। इसमें अभिषेक का वर्णन नहीं किया।

२. विक्रम की पांचवी शती में श्वेताम्बराचार्य विमलसूरि हुए।[क] आपने प्राकृत भाषा में **'पउम-चरियं'** ग्रन्थ की रचना की। इसके उद्देश्य ३२ में आपने गाथा १७८ से १८२ में पंचामृत अभिषेक द्वारा स्वर्ग में उत्तम देव और विमान प्राप्त करने की लौकिक भावना भायी है।

३. ईसा की सातवीं शती में रविषेण (ई. ६४३-६८३) दिगम्बराचार्य हुए। आपने विमलसूरि के **पउम-चरिय** का संस्कृत रूपांतरण जैसा करते हुए **पद्मपुराण** की रचना की। दोनों की उद्देश्य-पर्व संख्या समान है। रविषेणाचार्य ने पर्व १४ में वीतरागता की प्राप्ति हेतु श्रावक के बारह व्रतों का स्वरूप और अन्य आवश्यक कर्तव्यों को बताते हुए पूजन और अभिषेक का कोई वर्णन नहीं किया। जबकि आपने पर्व ३२ में राम-लक्ष्मण के वन गमन कर जाने से शोक-संतप्त भरत को संबोधित करते हुए आचार्य द्युति के माध्यम से गृहस्थ धर्म के रूप में सांसारिक अभिवृद्धि एवं स्वर्ग सुख की प्राप्ति हेतु श्लोक सं. १६५-१६९ में जिन पूजन और पंचामृत अभिषेक का विधान प्रासांगिक रूप से कराया है। ऐसा करते समय आचार्य रविषेण ने विमलसूरि का पूर्णतः अनुकरण किया है। दोनों के कथनों का मिलान करने पर यह स्थिति स्पष्ट होती है जो निम्न उद्धरण से समझी जा सकती है।

**पउम चरिय**

खारेण जोऽभिसेयं कुण्इ जिणिंद स्य भविराण्ण
सो खीर विमल धवले रमइ विमाणें सुचिरकाले।। (उद्देश्य ३२ : १७९)

---

**क- पउम-चरियं** के अंतिम पर्व की गाथा १०३ के अनुसार विमल सूरि ने उस ग्रन्थ की रचना भगवान महावीर के निर्वाण के ५३० वर्ष पश्चात् अर्थात् सन् ३ ई. में की थी। श्वेताम्बर-दिगम्बर उभय आम्नायों में मान्य विमलसूरि संभवतया दिगम्बर-श्वेताम्बर संघ भेद के अन्तिम रूप लेने के पूर्व हुए थे। -सम्पादक

**पद्मपुराण**

अभिषेषं जिनेन्द्राणां विधाय क्षीरधारया।

विमाने क्षीरधवले जायते परम द्युतिः।।(पर्व ३२ : १६६)

अर्थात् जो दूध धारा से जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक करता है वह दूध के समान धवल विमान में उत्तम कान्ति का धारक होता है। इसी पुराण में आगे श्लोक १६७-१६८ में दही और घी से जिनभिषेक का माहात्म्य बताया है।

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि लौकिक-स्वर्ग सुख की कामना से पंचामृत अभिषेक का प्रारम्भ प्रथमतः श्वेताम्बर परम्परा में हुआ। यह वैदिकी प्रभाव के साथ उनकी दार्शनिक मान्यता/अभिप्राय से मेल खाता प्रतीत होता है। साम्प्रदायिक सद्भाव के परिप्रेक्ष्य में दिगम्बराचार्य रविषेण ने उसका अनुकरण किया। उनकी दृष्टि में इसका उद्देश्य वीतरागता की प्राप्ति न होकर स्वर्ग सुख की प्राप्ति था। इस प्रकार भावनात्मक दृष्टि से पंचामृत अभिषेक करने का अभिप्राय दिगम्बर परम्परा के अनुरूप नहीं है।

रविषेण ने पर्व २७ के श्लोक २० में जनक द्वारा मलेच्छों के पराजय हेतु राजा दशरथ के श्रावकों की धार्मिकता का वर्णन करते हुए उन्हें पुराने धान आदि से पांच प्रकार के यज्ञ करने वाला दर्शाया है। यह बिन्दु भी विचारणीय है। दोनों ग्रन्थों की सूक्ष्म तुलना करने पर अन्य आगमिक विसंगतियां ज्ञात हो सकती हैं।

४. **महापुराण** पुराण परम्परा का मुकुटमणि रूप है। **आदि पुराण** और गुणभद्र विरचित **उत्तर पुराण** मिलकर **महापुराण** कहलाते हैं। **आदि पुराण** (पर्व ४२ तक) की रचना महाकवि आचार्य जिनसेन (ई. ७७०-८५०) ने नौवीं शती में की थी। दक्षिण भारत उस समय सांस्कृतिक संघर्ष के दौर में था। बौद्ध, शैव और वैष्णव धर्मों के साथ अंतर-बांह्य संघर्ष चल रहा था। धर्म-विद्वेषी राजाओं के सर्वनाशी प्रहार हो जाते थे तो कभी राजाश्रय का अपरिमित लाभ भी मिल जाता था। फिर भी सांस्कृतिक/दार्शनिक संघर्ष तो निरंतर बना ही रहा।ऐसे समय में **महापुराण** की रचना हुई। न्यायाचार्य पं. महेन्द्रकुमार जी के मतानुसार 'आ. जिनसेन ने भ. महावीर की उदारतम संस्कृति को न भूलते हुए ब्राह्मण-क्रिया कांड के जैनीकरण का सामयिक प्रयास किया था।' **महापुराण** में जैन दर्शन, धर्म और संस्कृति का दार्शनिक एवं व्यावहारिक पक्ष सविस्तार दर्शाया है। गर्भान्वय की ५३ क्रियाएं, दीक्षान्वय की ४८ क्रियाएँ (अवतार आदि आठ क्रियाओं के साथ गर्भान्वय की १४वीं उपनीति से अग्रनिवृत्ति तक की तिरपनवी क्रिया तक ८+४०=४८) तथा कर्त्रन्वय की ७ क्रियाओं

का भी वर्णन है। पूजा के भेद और स्वरूप भी दर्शाया है। पर्व १३ में जिन बालक ऋषभदेव के जन्माभिषेक तथा पर्व १७ में निष्क्रमणाभिषेक का वर्णन है, जो क्षीर सागर के निर्मल जल से सम्पन्न हआ था। किन्तु महापुराणकार आचार्य जिनसेन ने चारों प्रकार की पूजाओं के पूर्व या पश्चात पंचामृत अभिषेक का वर्णन नहीं किया है। उक्त गर्भाधान क्रियाओं में भी पंचामृत अभिषेक की कोई मान्यता या निर्देश नहीं किया है। **उपासकाचार सूत्रों** का संदर्भ दिया है। यज्ञोपवीत के पक्ष में आचार्य जिनसेन को प्रमाण स्वरूप मानने वाले विद्वांन मनीषियों को **महापुराण** में पंचामृत अभिषेक की अविद्यमानता का निष्कर्ष भी उदारतापूर्वक ग्रहण करना चाहिये। स्पष्ट है कि ईसा की ९-१०वीं शताब्दि तक जलाभिषेक की परम्परा रही होगी।

५. स्वामी कार्तिकेय अपरनाम स्वामी कुमार ने **कार्तिकेयानुप्रेक्षा** की धर्मानुप्रेक्षा में गाथा ३७३ से ३७६ तक प्रोषध प्रतिमा का स्वरूप बताया है। आपने प्रोषध की समाप्ति पर सामायिक वन्दना, पूजन-विधान आदि कर तीन प्रकार के पात्रों को आहार दान देकर भोजन करने का उल्लेख किया है। अभिषेक आदि का कोई उल्लेख नहीं किया। स्वामी कार्तिकेय का समय प्रथम शती ईस्वी है।

६. आचार्य श्री अमृतचन्द्र ने वि. सं. ९६२ (९०५ ई.) में **पुरुषार्थ सिद्धियुपाय** नामक आचार ग्रंथ की रचना की। इस ग्रंथ में जलाभिषेक या पंचामृत अभिषेक का कोई उल्लेख नहीं है। प्रभावना अंग में 'दानतपोजिनपूजा' (श्लोक नं. ३०) वाक्य में केवल जिनपूजा का उल्लेख है। प्रोषधोपवास के दिन प्रासुक द्रव्य से जिनपूजा का विधान किया है (श्लोक १५५)!

७. सोमदेव ने **यशस्तिलकचम्पू** (९५९ ई.) गत **उपासकाध्ययन** में पूजन और अभिषेक का विस्तृत वर्णन किया है। आपने सिंहासन को सुमेरूपर्वत मानकर जलाभिषेक कराया, पश्चात् दाखा, खजूर, नारियल, आंवला, केला, आम तथा सुपारी के रसों से अभिषेक कराया है, तत्पश्चात घी, दूध, दही, इलायची और लौंग के चूर्ण से जिन बिम्ब की उपासना का विधान किया है (श्लोक ५०३, ५०७ से ५११)। जिन शासन में सोमदेव शिथिलाचारी साधु माने जाते हैं। उन्होंने सर्वप्रथम वैदिक धर्म में प्रचलित पूजन-अभिषेक का अनुकरण किया है। यह वह समय था जब भट्टारकीय धार्मिक क्रियाकांड तंत्र-मंत्र एवं शिथिलाचार ऐहिक लाभ हेतु प्रारंभ हो गया था। आप श्री महेन्द्र भट्टारक के लघु भ्राता थे।

८. चामुण्डराय (१०वीं शती ईस्वी.) ने **चारित्रसारं** में श्रावकों के व्रतों एवं छह आर्य कर्मों के वर्णन में पूजन के महापुराणों की चारों प्रकारों की स्वरूप स्नपन अभिषेक करने का निर्देश मात्र किया है।

९. आचार्य अमितगति (ई. ९७५-१०२५) ने अपने **श्रावकाचार** में द्रव्य पूजा एवं भावपूजा का स्वरूप और जिनपूजा का माहात्म्य/फल का वर्णन किया है। जिनस्नान और जिनोत्सव करने वाले को लक्ष्मी मिलती है (श्लोक ४०)। अभिषेक या पंचामृत अभिषेक का कोई निर्देश नहीं किया।

१०. आचार्य वसुनंदि (११वीं शती ईस्वी) ने अपने **श्रावकाचार** में प्रोषध प्रतिमा के वर्णन में द्रव्य और भाव पूजन (गाथा २०७) तथा श्रावक के कर्तव्य बताकर पूजन का विस्तृत वर्णन किया। स्थापना पूजन में नवीन प्रतिमा का निर्माण एवं शास्त्रीय विधि से प्रतिष्ठा-स्नपना करने का विधान किया है (गाथा ४२४)। तीर्थंकरों के गर्भ-जन्मादि कल्याणकों की 'काल पूजन' के दिन इक्षुरस, घी, दही, दूध, गंध और जल से भरे कलशों से जिनाभिषेक का वर्णन किया है (गाथा ४५३-४५४)।

११. पंडित प्रवर आशाधर जी (ई. ११७३-१२४३) ने **सागार धर्मामृत** के दूसरे अध्याय में पूजा के नित्यमह, सर्वतोभद्र, कल्पद्रुम और अष्टान्हिक भेद बताकर स्तवन आदि का उपदेश दिया। इस स्थल पर पंचामृत अभिषेक का कोई उल्लेख नहीं है (२, २४-३१)। इससे ध्वनित होता है कि उस समय पंचामृत अभिषेक सार्वजनिक जिन मंदिर में प्रचलित नहीं था। पं. आशाधर जी ने अध्याय ६ में मध्याह्न (दोपहर) की पूजा में **'प्रतिष्ठा सारोद्धार'** प्रतिष्ठा पाठ का श्लोक उद्धृत किया जिसमें अभिषेक की प्रतिज्ञा सहित पंचामृत अभिषेक की विधि और अष्ट द्रव्य से पूजन का विधान किया है (सा. ध. ६-२२)। प्रचलित परम्परानुसार यह काल-पूजा का अंग है।

१२. आचार्य सकलकीर्ति (ई. १३८०-१४४२) ने **प्रश्नोत्तर श्रावकाचार** के बीस वें अध्याय में पूजन का विस्तृत वर्णन करते हुए पंचामृत अभिषेक का कोई वर्णन नहीं किया जबकि वे स्वयं प्रतिष्ठाएं कराते थे। श्लोक १९६ में यह घोषित किया कि जो उत्तम भाव से स्वच्छ जल से जिनदेव के अंग का प्रक्षालन करते हैं, उस धर्म से उनका महापाप मल क्षय हो जाता है।

१३. आचार्य पद्मनन्दि (१२८०-१३३० ई.) ने **श्रावकाचार सारोद्धार** में जिनपूजन का विधान प्रोषधोपवास के दिन केवल आधे श्लोक में किया (श्लोक ३१३)। एक अन्य आचार्य पद्मनंदि जी ने **श्रावकाचार** में जिनबिम्ब जिनालय बनवाकर नित्य ही स्तवन पूजन कर पुण्योपार्जन का विधान किया है (श्लोक २२-२३)। ऐसा ही विधान **उपासक संस्कार** में पद्मनंदी नाम के एक अन्य आचार्य ने किया है (श्लोक ३४-३६)। किसी ने भी पंचामृत अभिषेक का उल्लेख नहीं किया।

१४. पं. राजमल्ल जी ने **लाटी संहिता** के दूसरे सर्ग के १६३-१६४ श्लोकों और पंचम सर्ग के १७०-१७७ श्लोकों में पूजन का विधान किया है। दोनों स्थलों पर जल या पंचामृत अभिषेक का कोई उल्लेख नहीं किया।

१५. माथुर संघ के आचार्य देवसेन (ई. ८९३-९४३) ने प्राकृत **भाव संग्रह** में देवपूजन का महत्व दर्शाकर जिनदेव के समक्ष धर्मध्यान करने और अपने को इन्द्र तथा जिन बिम्ब को साक्षात् जिनेन्द्र देव मानकर जल, घी, दूध और दही से भरे कलशों से स्तवन कर पूजन का विधान किया है (गाथा ७-९३)। इसी प्रकार पं. वामदेव ने संस्कृत **भाव संग्रह** में घर पर ही पंचामृत अभिषक और पूजन का विधान किया है (श्लोक २८ से ५८)।

१६. **सावय धम्म दोहा, श्री नेमिदत्त के धर्मोपदेश, पीयूषवर्ती श्रावकाचार** एवं **भव्य धर्मोपदेश उपासकाध्ययन** में जिनदेव ने घी, दूध आदि पंचामृत अभिषेक का विधान किया है।

१७. **गुण भूषण श्रावकाचार, व्रतसार श्रावकाचार, व्रतोद्योतन श्रावकाचार, पुरुषार्थानुशासनगत श्रावकाचार, रयणसार, तत्वार्थसूत्र, चारित्र पाहड** आदि में जलाभिषेक या पंचामृत अभिषेक का कोई विधान नहीं है।

१८. संहितासूरि पं. नाथूलाल जी ने **'बीसपंथ और तेरहपथ चर्चा'** (**समन्वयवाणी**- अगस्त ०२ ॥) में उल्लेख किया है कि नये सवस्त्र भट्टारकों ने अपने शिथिलाचार को पुष्ट करने हेतु **कुन्दकुन्द श्रावकाचार, उमास्वामी श्रावकाचार, पूज्यपाद श्रावकाचार, अकलंक बिंब प्रतिष्ठा पाठ** आदि उन्हीं आचार्यों के नाम से रचना कर मंदिरों के शास्त्र भंडारों में विराजमान करा दिये और उनके नाम से क्रियाकांड संचालित करते रहे। इनका खुलासा पं. श्री जुगल किशोर मुख्तार, आचार्य श्री सूर्यसागर, पं. पन्नालाल दूनी वाले, पं. मिलापचंद कटारिया तथा पं. राजकुमार शास्त्री ने अपनी कृतियों में किया है, जो पठनीय हैं। दूसरे, पंचामृत अभिषेक का सम्बन्ध यक्ष-यक्षिणी की पूजा-पद्धति से भी जुड़ा प्रतीत होता है। इन तथ्यों का अन्वेषण करना अपेक्षित है।

जलाभिषेक या पंचामृत अभिषेक पूजा की पद्धति है। इसका सम्बन्ध सम्यग्-मिथ्या की धारणा की अपेक्षा अहिंसक पूजा पद्धति के विवेकपूर्ण औचित्य और दार्शनिक संगतता से जुड़ा है। यह भी विचारणीय है कि अहिंसा की साधना हेतु अ-स्नान व्रतधारी मुनिराज जब परम लक्ष्य को प्राप्त कर लेते हैं तब उनकी मूर्ति के अभिषेक का क्या औचित्य है और फिर जब गृहस्थावस्था में जिस द्रव्य या द्रव्यों (रसों) से हम स्नान नहीं कर सकते उन रसों से जिनेन्द्र देव का अभिषेक करना कितना युक्तिसंगत

कहा जा सकता है। बिना किसी की भावनाओं को आहत किये यह भी विचारणीय है कि पवित्र-मर्यादित दूध-घी-दही मिलना सर्वत्र सुलभ नहीं है, अभिषेक के जल/दूध में असंख्य त्रस जीव राशि उत्पन्न हो जाती है, मूर्तियों के रंध्रो में दूध-दही से चींटी आदि की त्रस हिंसा होती है, गंधोदक जल की विराधना भी होती है। अहिंसा के और भी दार्शनिक पहलू हैं, जो मन को कुरेदते हैं। उक्त तथ्य आगे अन्वेषण का आधार बन सकते हैं।

**निष्कर्ष:**

१. दार्शनिक और औचित्यता की दृष्टि से जिनशासन में मूलतः जलाभिषेक की परम्परा ही रही है। पंचकल्याणक के समय नवीन मूर्ति पर सर्वोषधि, चंदन लेप कर 'कालपूजा' में उसकी शुद्धि करते हैं। पश्चात् जलाभिषेक ही होता है। आगमिक संदर्भ सावधानीपूर्वक समझें।

२. पंचामृत अभिषेक श्वेताम्बर परम्परा एवं वैदिक परम्परा से प्रभावित और पल्लवित है। यद्यपि इस परंपरा का बीजारोपण सातवीं शती में आचार्य रविषेण ने किया किन्तु दसवीं शती में आचार्य सोमदेव ने पल्लवित किया। मूल संघ से भिन्न अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाए रखने हेतु माथुर संघ, काष्ठासंघ ने शिथिलाचार को आगे बढ़ाया। यापनीय संघ एवं भट्टारक परम्परा ने इसे पुष्ट किया। इस दृष्टि से डॉ. वासुदेव उपाध्याय जैसे निष्पक्ष इतिहास मनीषियों के निष्कर्ष यथार्थता के निकट हैं। समग्रता में आगम एवं इतिहास के परिप्रेक्ष्य में विचारणीय हैं।

३. पूज्य आचार्य विद्यानंद जी जैसे प्रतिभा सम्पन्न तार्किक अध्ययनशील महामना के आगम, पुरातत्व एवं अनुभव आधारित सम्यक् निष्कर्ष अनुकरणीय/मननीय हैं।

४. बदले परिप्रेक्ष्य में दार्शनिक मान्यता से साम्य रखने वाली परम्पराओं की पुनः स्थापना श्रमण परम्परा के अनुरूप होगी और अभिषेकों के नाम पर धनार्जन रुकेगा।

५. जो साहित्य जैन दर्शन की मान्यता के विपरीत भ्रम उत्पन्न करने वाला है उसे गौण किया जाना चाहिये जिससे सामाजिक सद्भाव में वृद्धि हो।

उक्त विवरण परोक्ष रूप से द्वितियक सामग्री से उदभूत है उसमें कहीं अन्यथा विवरण या चूक हुई हो तो उदार-विद्वानों के द्वारा संकेत लिये जाने पर सहर्ष शुद्धिकरण हेतु तत्पर हूँ।

**- बी-३६६ ओ.पी. एम. अमलाई**
**जिला-शहडोल (म.प्र.) ४८४११७**

# मध्य युग का एक फक्कड़ साहित्यकार
# कवि पं. बनारसीदास जैन

– डॉ. मालती जैन

(कविवर बनारसीदास का जन्म जौनपुर में संवत् १६४३ (१५८६ ई.) की माघ शुक्ल एकादशी को श्रीमालवंशीय बिहोलिया गोत्री जैन धर्मानुयायी जौहरी खरगसेन के घर में हुआ था। उन्होंने १४ वर्ष की अल्पवय में ही एक हजार दोहे-चौपाई में **'नवरस'** नामक श्रृंगारिक कृति की रचना कर डाली थी जिसे बाद में विरक्ति होने पर गोमती नदी में प्रवाहित कर दिया। जीवन में उन्होंने अनेक उतार-चढ़ाव देखे। उनकी भूमिका एक असफल व्यापारी और आध्यात्मिक कवि की रही। उन्होंने सन् १६१३ ई. में २०० छन्दों में **'नाममाला'** नामक पद्यबद्ध कोश की रचना की थी। मुग़ल बादशाह शाहजहाँ के राज्यकाल में आगरा में पं. रूपचंद आदि अपने ५ मित्रों की प्रेरणा से ईस्वी सन् १६३६ की आश्विन शुक्ल त्रयोदशी को उन्होंने अपनी आध्यात्मिक कृति **'समयसार नाटक'** की रचना पूर्ण की। और सन् १६४१ ई. की अगहन शुक्ल पंचमी को पचपन वर्ष की वय में आत्म-चरित लिखने का विचार मन में आने पर उन्होंने अपने जीवन का लेखा-जोखा बड़े निष्पक्ष भाव से आगरा-मथुरा अंचल की भाषा में ६७५ दोहे-चौपाई में **'अर्द्ध कथानक'** नाम से निबद्ध कर डाला। कवि के जीवन और तत्कालीन जनदशा पर प्रकाश डालने वाला ऐतिहासिक दस्तावेज स्वरूप यह आत्मचरित हिन्दी ही नहीं भारतीय भाषाओं में निबद्ध पहला आत्मचरित माना जाता है। इनकी अन्तिम ज्ञात रचना **'कर्म प्रकृति विधान'** है जो सन् १६४३ ई. की फाल्गुन शुक्ल सप्तमी को पूर्ण हुई थी। और इनकी फुटकर रचनाओं का संकलन **'बनारसी विलास'** नाम से इनके मित्र पं. जगजीवन ने इनकी मृत्यु के उपरान्त संवत् १७०१ (१६४४ ई.) की चैत्र शुक्ल द्वितीया को किया था।

उन्हीं फक्कड़ साहित्यकार बनारसीदास के विषय में विदुषी डॉ. मालती जैन का यह भावपूर्ण विवेचन यहाँ प्रस्तुत है। – सम्पादक)

बहुत दिनों पूर्व मध्यकालीन जैन साहित्यकारों में मूर्धन्य स्थान पर प्रतिष्ठित आध्यात्मिक कवि पं. बनारसीदास का निम्न पद पढ़ा था-

लिखत पढ़त ठाम ठाम लोक लक्ष कोटि
ऐसा पाठ पढै, कछु ज्ञान हू न बढ़िए
मिथ्यामति पचि पचि शास्त्र के समूह पढ़े
पर न विकास भयौ भदधि कढ़िए
दीपक संजोय दीनो, चक्षुहीन ताके कर
विकट पहार वापै कबहूँ न चढ़िए
"बानारसीदास" सो तो ज्ञान के प्रकाश भये
लिख्यो कहा पढ़ै कछू लख्यो है सो पढ़िए।।"

**बनारसीदास : ज्ञानबाबनी पद सं. १५**

आज जब कविवर बनारसीदास के जीवन और साहित्य के विषय में कुछ लिखने को लेखनी मचली है, तब उपर्युक्त पद मेरे स्मृति पटल पर विद्युत्-रेखा की भाँति कौंध गया है। मुझे यह प्रतीत होता है कि पद की अंतिम पंक्ति-"लिख्यो कहा पढ़ै कछू लख्यो है सो पढ़िए" पोथी पढ़-पढ़ कर मर जाने वाले मुआ जग को दिया गया उद्बोधन तो है ही, किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से यह पंक्ति कवि के समस्त जीवन और साहित्य का यथार्थ विश्लेषण भी है। कवि के व्यक्तित्व और कृतित्व की सूत्र रूप में इतनी सच्ची और स्पष्ट व्याख्या अन्य ढंग से नहीं की जा सकती है।

बनारसीदास जी की सृजनशीलता का सबसे बड़ा आकर्षण यह है कि उन्होंने अपने बहुरंगी जीवन में जो कुछ देखा, भोगा और भोगने के पश्चात सांसारिक भोगों की निस्सारता और क्षणभंगुरता तथा ज्ञान-वैराग्य की महत्ता के विषय में जो अपनी आत्मा में अनुभव किया, उसकी सच्ची और मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति अपने साहित्य में की है। संत कवि कबीर की तरह उन्होंने "कागद लेखी" का पिष्टपेषण नहीं किया, अपितु "आखिन देखी" बात कही और कही इस फक्कड़पन और अक्खड़पन के साथ कि आलोचकों को उन्हें "फक्कड़ शिरोमणि" उपाधि से विभूषित करना पड़ा।

"फक्कड़ शिरोमणि कविवर बनारसीदास जी ने तीन सौ बरस पहले आत्म-चरित लिखकर हिन्दी के वर्तमान और भावी फक्कड़ों को मानो न्यौता दे दिया है।"[1]

बनारसीदास जी का जीवन और साहित्य भोग से विराग की यात्रा है, अंधकार से प्रकाश की यात्रा है, पुद्गल से आत्मा की यात्रा है, प्रवृत्ति से निवृत्ति की यात्रा है, धरती से सिद्धशिला की यात्रा है।

कवि ने अपने जीवन में जितने उतार-चढ़ाव देखे- कम लोग देख पाते हैं। अल्पवय में ही कुल-कान और लोक-लाज छोड़कर आसिखबाज होने वाला कवि "रतिरंग" में बहुत गहरे पैठा था।[२] उसे न खान-पान की सुध थी और न रोजगार की।[३] अंधविश्वास के कर्दम में भी कवि आपादमस्तक निमग्न रहा। कभी एक जोगी के कहने से एक "संखोली" को "सिवगेह" पाने की आशा में साल भर तक पूजता रहा तो कभी दरवाजे पर एक दीनार मिलने के लालच में शौचालय में बैठकर किसी सन्यासी के दिए हुए मंत्र का जाप करता रहा।[४] व्यापारिक असफलता की गहरी निराशा का भी कटु अनुभव कवि को हुआ था। लोकापमान और तिरस्कार भी प्रभूत मात्रा में कवि के हिस्से आया। कभी चाबुक खाने की नौबत आई तो कभी शूली चढ़ने की।[५] कभी "जोरावर" पुरुष की खाट के नीचे टाट पर सोकर जान बचाई[६] तो कभी जनेऊ धारण कर ब्राह्मण बनकर चोरों से मुक्ति पाई।[७] कवि ने तीन विवाह किये, दो पुत्रियाँ और सात पुत्रों का पिता बना किन्तु उसने अपनी ही आँखों से अपनी गृहस्थी रूपी वाटिका को उजड़ते हुए भी देखा-

"नौ बालक हुए मुए, रहे नारि नर दोइ
ज्यौं तरवर पतझार व्है, रहैं ठूँठ से होइ।।६४३।।

कवि ने अपनी जीवन-यात्रा के इन कटु अनुभवों को अपनी आत्मकथा **"अर्द्धकथानक"** में जिस निश्छलता और साफगोई से बखाना है, उसे देखकर कवि के नैतिक साहस पर मस्तक श्रद्धा से झुक जाता है। आत्म चित्रण वास्तव में "तलवार की धार पै धावनो है" और इस कठिन परीक्षा में कवि शत प्रतिशत सफल हुआ है। इस सन्दर्भ में कवि की प्रशंसा करते हुए बनारसीदास चतुर्वेदी ने लिखा है-

"अपने चारित्रिक दोषों पर उन्होंने पर्दा नहीं डाला है, बल्कि उनका विवरण इस खूबी के साथ किया है मानो कोई वैज्ञानिक तटस्थ वृत्ति से विश्लेषण कर रहा हो। आत्मा की ऐसी चीड़फाड़ कोई अत्यन्त कुशल साहित्यिक सर्जन ही कर सकता था।"

बनारसीदास जी की आत्मकथा का महत्व इस परिप्रेक्ष्य में और अधिक बढ़ जाता है कि वह हिन्दी साहित्य की सर्वप्रथम आत्मकथा है। बनारसीदास चतुर्वेदी के शब्दों में-

"हिन्दी का तो यह सर्वप्रथम आत्म-चरित है ही पर अन्य भारतीय भाषाओं में इस प्रकार की, और इतनी पुरानी पुस्तक मिलना आसान नहीं।"

मुझे बनारसीदास जी के जीवन की जिस बात ने सर्वाधिक प्रभावित किया है वह यह है कि विषय-भोगों की अगाध गहराई में आकंठ निमग्न होकर, अंध-विश्वास के कर्दम में गहरे फँसकर, उन्होंने पल भर में अन्तरात्मा की आवाज पर वैराग्य की मंजिल की ओर जो छलांग लगाई वह उतनी ही ऊँची थी जितने गहरे वे रति-रंग में डूबे थे। बनारसीदास का ज्ञान-वैराग्य उनकी अतिशय भोगवादी मनोवृत्ति की मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया है और इसीलिए उसकी अनुभूति इतनी सच्ची है कि उनका वैराग्य ओढ़ा हुआ नहीं लगता। घनघोर अन्धकार में भटकने के बाद ही प्रकाश के महत्व को समझा जा सकता है। जिसने तम देखा ही नहीं उसके लिए आलोक महत्वहीन है। बनारसीदास जी ने विषय भोगों के अन्धकार और ज्ञान के प्रकाश दोनों को अपनी आँखों से लखा था इसलिए उनके साहित्य में विषय भोगों की निन्दा में जितनी सच्चाई है उतना ही सच्चा है उनका आत्मा का अनुभव। कवि ने **'नवरस'** में नारी-देह को चर्मचक्षुओं से देखा था और **"समयसार"** की रचना करते समय जब उसके ज्ञानचक्षु खुल गये तब वह कह उठा-

मांस की गरंथि कुच कंचन-कलस कहैं,
कहैं मुखचंद जो सलेषमा को घरु है।
हाड़ के दसन आहि हीरा मोती कहैं ताहि,
माँस के अधर ओंठ कहैं बिम्बफरु है।।
हाड़दण्ड भुजा कहैं, कौंलनाल कामधुजा,
हाड़ ही के थंभा जंघा कहैं रंभातरु है।
योंही झूठी जुगति बनावैं और कहावैं कवि,
येते पर कहैं हमें सारदा को वरु है।।

यौवन के उद्दाम वेग में कवि ने स्वयं "अस्थि चर्ममय देह" के क्षणिक और बाह्य सौन्दर्य के गीत गाये थे, इसीलिए नारी-देह के प्रति उसकी यह विरक्ति कितनी तीव्र और सच्ची है।

**समयसार नाटक** बनारसीदास जी का कीर्तिस्तम्भ है। यह कहना अतिशयोक्ति पूर्ण नहीं होगा कि यदि कवि ने मात्र **समयसार** की ही रचना की होती तो यह इकलौता ग्रन्थ उन्हें अमर करने के लिए पर्याप्त था। जैन समाज में **समयसार नाटक** का वही महत्व है जो मुसलमान समाज में **कुरान** और ईसाई समुदाय में **बाइबिल** का। इस ग्रन्थ की रचना भी इस तथ्य की पुष्टि करती है कि कवि ने वही नहीं कहा

जो उसके पूर्ववर्ती आचार्यों ने लिखा था अपितु उसने जो कुछ अपने ज्ञान चक्षुओं से लखा था उसे भी इस ग्रन्थ में मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति दी है। जैसा सर्वविदित है यह ग्रन्थ कवि की मौलिक कृति नहीं है। आचार्य कुन्दकुन्द का **'समय प्राभृत'**, उस पर अमृतचन्द्राचार्य कृत **'आत्मख्याति'** नामक संस्कृत टीका और पण्डित राजमल्ल कृत **'बाल बोध भाषा टीका'**- इन तीनों के आधार पर ब्रजभाषा में इस छंदोबद्ध बृहत् ग्रन्थ का प्रणयन हुआ है। कवि ने भावों का सार लेकर अनेक अलंकारों से युक्त परिष्कृत परिमार्जित भाषा और प्रसाद गुण शैली द्वारा **समयसार नाटक** को इतना रोचक बना दिया है कि यह कृति मूलग्रंथों से बढ़कर प्रतीत होती है। नाटक के अन्त में ११३ पदों में लिखा गया **"चतुर्दश गुणस्थानाधिकार"** बनारसीदास जी का मौलिक सृजन है। अनुवाद का कार्य सरल नहीं है। इस कार्य की कठिनता पर प्रकाश डालते हुए डॉ. राघवन ने लिखा है-

"अनुवाद और नारी में एक बड़ी समानता है कि यदि ये रोचक होते हैं तो शुद्ध नहीं होते और शुद्ध होते हैं तो रोचक नहीं होते।"

कविवर बनारसीदास जी का **समयसार नाटक** आलोचकों की इस प्रचलित धारणा को निर्मूल सिद्ध करता है। वह शुद्ध भी है और रोचक भी। **"समयसार"** का निम्न पद कवि की विलक्षण कवित्वशक्ति का प्रत्यक्ष प्रमाण है। रूपक के माध्यम से कवि ने "ज्ञान पातसाह" के वैभव का जो सवाक् चित्र खींचा है वह कितना यथार्थ और आकर्षक है, देखिए-

जगत के प्राणि जीति व्है रहै गुमानि ऐसो।
आस्रव असुर दुखदानि महाभीम है।।
ताको परताप खंडिवौ को परगट भयो,
धर्म को धरेया कर्म रोग को हकीम है।।
जाके परभाव आगे भागे परभाव सब,
नागर नवल सुख-सागर की सीम है।।
संवर को रूप धरे साधे शिवराह ऐसो,
ज्ञान पातसाह ताको मेरी तसलीम है। "११३"

अध्यात्म जैसा रूखा एवं गम्भीर विषय भी बनारसीदास जी की काव्य प्रतिभा से सम्पृक्त होकर सरल एवं सरस हो गया है।

कवि का **"नवरस"** जो भौतिकता का काव्य था, ऐन्द्रिकता का इन्द्रजाल था-गोमती के गर्भ में समा सकता है, किन्तु समय की कोई सरिता उनके "समयसार" को नहीं लील सकती क्योंकि **'समयसार'** आत्मा का काव्य है। जब तक इस धरती पर एक भी मुमुक्षु प्राणी जीवित है, **"समयसार"** प्रकाश-स्तम्भ की तरह उसका मार्गप्रशस्त करता रहेगा। इस अमरकृति के सन्दर्भ में सच ही कहा गया है-

हाटक सो विमल, विराटक सो विस्तार
नाटक सुनत हिए फाटक खुलत हैं।

बनारसीदास जी की दिव्य दृष्टि आध्यात्मिक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं थी। उन्होंने तत्कालीन समाज की विभीषिका को भी निकट से देखा था। कवि का आविर्भाव मुग़ल बादशाह अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ के शासन काल में हुआ था। तत्कालीन समाज में हिन्दू और तुर्क में भेदभाव पनप रहा था। सम्प्रदाय, जाति और धर्म की इस संकीर्णता को कवि का उदार हृदय सहन न कर सका और वह कह उठा-

एक रूप हिन्दु, तुरुक, दूजी दशा न कोय।
मन की दुविधा मानकर, भये एक सो दोय।।
दोऊ भूले भरम में, करें बचन की टेक।
"राम राम" हिन्दू कहैं, तुरुक "सलामालेक"।।
तिनकों-द्विविधा जे लखे, रंग बिरंगी चाम।
मेरे नैनन देखिए, घट घट अंतर राम।।

कवि ने अपने नैनों से घट घट के अंतरराम को देखा और जो कुछ देखा उसे फक्कड़ाना अंदाज में कहा।

कवि का अपना जीवन भी धार्मिक संकीर्णताओं से परे था। जन्म से कवि श्वेताम्बर था-श्रीमाल बंशकुलोत्पन्न।[५] जीवन के प्रारम्भिक चरण में कवि वैष्णव, शैव, तांत्रिक सभी धर्मों के क्रियाकांडों और अंधविश्वासों में फंसा रहा। जीवन के अन्त में 'स्याद्वाद परिणति' में उसकी आत्मा का परिणमन हुआ।[६] और वह इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि धर्म का सम्बन्ध बाह्य प्रदर्शन और क्रियाकाण्ड से नहीं है, धर्म का सच्चा नाता आत्मा से है। धर्म और सम्प्रदायगत संकीर्णता के दलदल से ऊपर रहने का इससे पुष्ट प्रमाण और क्या होगा कि उसने अपनी किसी भी कृति में यह उल्लेख नहीं किया कि वह श्वेताम्बर मतावलम्बी था या दिगम्बर मतावलम्बी। कवि की इसी विशाल हृदयता की प्रशंसा करते हुए डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने लिखा है-

"बनारसीदास न श्वेताम्बर थे न दिगम्बर, वे जैन थे।।"

डॉ. रवीन्द्र कुमार जैन ने भी अपने शोध-प्रबन्ध **"बनारसीदास व्यक्तित्व एवं कृतित्व"** में कवि के विषय में ऐसी ही धारणा प्रस्तुत की है, "कविवर बनारसीदास ने सत्रहवीं शताब्दी के द्वितीयार्ध में सच्चे जैनत्व की दिशा में जनता का आदर्श मार्गदर्शन किया।"

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि कवि बनारसीदास का व्यक्तित्व जीवन संघर्षों की भयानक आँच में तपा, पिघला, किन्तु अंत में निकला खरे सोने की तरह चमकता हुआ। इस अपराजेय व्यक्तित्व ने अपनी बहुरंगी जिन्दगी में जो कुछ लिखा, उसे सच्चाई के साथ अपनी कृतियों के रूप में साहित्य, समाज और संस्कृति को सौंप दिया। यह अमूल्य थाती साहित्य का सत्व है, समाज का आदर्श है और संस्कृति का श्रृंगार है।

**सन्दर्भ:**


१. बनारसीदास चतुर्वेदी- **अर्द्धकथानक की भूमिका**

२. तजि कुल-कान लोक की लाज। भयौ बनारसि आसिखबाज।।१७० अर्द्ध.

३. कै पढ़ना कै आसिखी, मगन दुहू रस मांहि।
खान-पान की सुध नहीं, रोजगार किछु नाहि।।१८०।।

४. जोगी एक मिल्यौ तिस आइ। बानारसी दियौ भौंदाइ।।
दीनी एक संखोली हाथ। पूजा की सामग्री साथ।।२१६।।
कहै सदासिव मूरति एह। पूजै सो पावै सिव गेह।।
तब बनारसी सीस चढ़ाइ। लीनी नित पूजै मन लाइ।।२२०।।
वह प्रदेस उठि गयौ स्वतन्त्र। सठ बनारसि साधै मंत्र।।२१५।।
बरस एक जब पूरा भया। तब बनारसी द्वारै गया।।
नीची दिष्टि बिलोकै धरा। कहुँ दीनार न पावै परा।।२१६।।

५. कै तो तुम अवही उठि जाहु। कै तो मेरी चाबुक खाहु।।३०३।।

६. दीनौ एक पुरानो टाट। ऊपर आनि बिछाई खाट।।३०५।।

७. सूत काढ़ि डोरा बट्यौ, किए जनेऊ चारि।
पहिरे तीनि तिहूं जनें, राख्यौ एक उबारि।।४२१।।

८. जैनधर्म श्रीमाल सुबंस, बानारसी नाम नरहंस।।४।।

९. तब बनारसी औरै भयौ। स्याद्बाद परिनति परिनयौ।।६३४।।



**- सेवानिवृत्त अध्यक्ष-हिन्दी विभाग**
**श्री चित्रगुप्त स्नातकोत्तर महाविद्यालय, १४६,कटरा, मैनपुरी**

# कविवर पुष्पेन्दु जैन

**- श्री दयानन्द जड़िया 'अबोध'**

(कवि फूलचन्द जैन 'पुष्पेन्दु' का जन्म मई १९१४ ई. में हुआ था और वह २८ मई, १९६३ ई. को मात्र ४९ वर्ष की वय में दिवंगत हो गये। इस वर्ष मई मास में ९४वीं जन्म जयन्ती और ४५वीं पुण्य तिथि पर उनका पुण्य स्मरण करने हेतु नगर के सुकवि श्री दयानन्द जड़िया 'अबोध' की लेखनी से प्रसूत यह श्रद्धा-सुमन प्रस्तुत है। - सम्पादक)

लखनऊ नगर की धरती पर बनारसी दास जैन गोटे वाले के घर में ज्येष्ठ मास सम्वत् १९७१ वि. अर्थात् सन् १९१४ ई. में एक ऐसा फूल खिला जो बचपन में फूलचन्द के नाम से जाना गया और कालान्तर में साहित्यिक प्रतिभा के वर्चस्व में पुष्पेन्दु जैन के नाम से विख्यात हुआ।

पुष्पेन्दु जी छः भाई और एक बहन थे। आप अपने माता-पिता की चौथी सन्तान थे। तीन भाई बड़े थे और दो छोटे। एक बहन भी थी। पुष्पेन्दु जी का जीवन बचपन से ही कष्टों व अभावों तथा संघर्षों में व्यतीत हुआ। उन्होंने जीवन में कभी हार नहीं मानी। अभावों में रहते हुये उनके मन-मस्तिष्क में भावों की ऐसी सरिता उमड़ी जो रस से प्लावित थी और जिसमें कल्पना की तरंगें अनवरत उठ रही थीं। आप बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। आपने पद्य के साथ ही गद्य साहित्य का भी सृजन किया।

आपका व्यक्तिगत जीवन जितना ही कष्टकारी रहा साहित्यिक जीवन उतना ही यशस्वी। ४९ वर्ष की अल्पावस्था में आपको तीन बार शादी रचानी पड़ी। दूसरी पत्नी का मस्तिष्क असंतुलित हो जाने की दशा में उसे १३-१४ वर्ष भोजन बना कर खिलाते रहे। जीवन यापन के लिये कभी कंघा, शीशा, बिन्दी, टिकुली लेकर फेरी की कभी परचून की दुकान। ३८ वर्ष की अवस्था में हाईस्कूल और फिर इण्टर किया। कुछ दिन अध्यापन कार्य किया और अन्त में कुछ दिन 'नवजीवन' के सम्पादकीय विभाग में पत्रकारिता की।

आपने दो सौ पचास से अधिक कविताओं का सृजन किया। आपकी माताजी चूंकि सस्वर भजन गायिका थीं और पिता जी अच्छे किस्सागो और भजन प्रेमी थे, अतः सस्वर काव्य-पाठ तो आप को पैत्रिक विरासत में प्राप्त हुआ था। मंच से काव्य-पाठ करते हुये आप जनता को घंटों मंत्र-मुग्ध किये रहते थे।

आपके समकालीन साहित्यकार जैसे अमृत लाल नागर, भगवती चरण वर्मा, रूप नारायण पाण्डेय, श्री नारायण चतुर्वेदी, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर आदि भी आपके प्रशंसकों में रहे हैं। रूपनारायण पाण्डेय ने पुष्पेन्दु जी की कवितायें 'माधुरी' में प्रकाशित. कीं।

अमृतलाल नागर "एक कसक भरी पावन स्मृति" शीर्षक से "बसन्त बहार" पुस्तक (जिसमें पुष्पेन्दुजी के देहावसानोपरान्त उनकी रचनाएं प्रकाशित हुईं) में लिखते हैं- "इस काल में पुष्पेन्दुजी की काव्य प्रतिभा का पूर्ण विकास भी हुआ। आस्था, लगन, धैर्य और करुणा की यह दिव्य पूंजी कविताओं के रूप में पुष्पेन्दु जी का यशो वैभव बन गई, उनकी उस जमाने में लिखी हुई 'दुख-सुख' कविता मुझे आज तक बेहद पसंद है, मैंने न जाने कितनी बार उनसे आग्रह करके वह कविता सुनी थी"-

**"दुख भी मानव की सम्पत्ति है।**
**तू दुख से क्यों घबराता है।।"**

पुष्पेन्दु जी की साधना अविराम गति से चलती रही। १३-१४ वर्ष जब उनकी द्वितीय पत्नी मानसिक व्याधि से पीड़ित थीं उस समय भी पुष्पेन्दु जी उनकी सेवा करते हुये और उनकी सभी इच्छाओं की पूर्ति करते हुये साहित्य साधना में रत रहे। वे आशावादी तथा प्रगतिवादी थे तभी तो कहते हैं-

**"विश्व में नव जागरण हो।"**

सामाजिक विसंगतियों और मानवीय कृत्यों को देख कर कह उठते हैं-

"क्या सचमुच इन्सान यही है।
** ** **
हिंसा चोरी बलात्कार क्या
इनके कार्य महान यही हैं।।"

कवि कुल कमल दिवाकर संत कवि तुलसीदासजी के प्रति उनके उद्‌गार कितने सुन्दर हैं-

**"नभ में रवि शशि भू पर**
**जब तक पावन गंगा धारा।**
**अमर रहेगा नाम विश्व में**
**तुलसीदास तुम्हारा।।"**

जिस हृदय में राष्ट्र-प्रेम नहीं वह हृदय भी क्या है? कवि मातृ भूमि को प्रणाम करते हुये कहता है-

**"विनत भाल युत शत प्रणाम-**
**हे! देश महान तुम्हें।"**

प्राणियों में सद्भावना हो, की भावना से ओत प्रोत ये पंक्तियाँ कितनी मनभावन हैं-

**"जीव जितने जगत में,**
**हो न वैर विरोध उनसे।**
**कर्म के प्रेरे सभी हैं,**
**मत करो तुम क्रोध उनसे।।"**

कवि पुष्पेन्दु जी ने अपने जीवन के अन्तिम दिनों में भी सम सामयिक विषयों पर जागरूक हो अपनी लेखनी चलाने में कोई कोर कसर न छोड़ी। भारत पर चीनी आक्रमण देख वे कह उठते हैं-

**"दुनिया ने था सुना एक दिन**
**हिन्दी चीनी भाई-भाई।**
**आज वही नाते ठुकराते**
**चाऊ तुम को लाज न आई।।"**

भगवती चरण वर्मा लिखते हैं- "पुष्पेन्दु में कल्पना के स्वप्न हैं, पुष्पेन्दु में यथार्थ की पीड़ा हैं। संवेदना और सहानुभूति का यह कवि बड़े धैर्य के साथ जीवन के संघर्षों में रत रहा- वह टूट गया पर झुका नहीं। जिन्दगी भर दुख झेलने वाला यह कवि किस धैर्य और साहस के साथ कहता है-

**दुख एक कसौटी है जिस पर,**
**यह मानव परखा जाता है।"**

इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि पुष्पेन्दु जैन करुणा और पीड़ा के कवि थे। यद्यपि वे अपने नश्वर शरीर में आज हमारे बीच नहीं हैं तथापि उनकी रचनायें अनन्त काल तक उनको अमर बनाती रहेंगी।

**-- 'चन्द्रा-मण्डप'**
**३७०/२७, हाता नूर बेग,**
**संगम लाल बीथिका, सआदतगंज, लखनऊ- २२६००३**

# आत्म कल्याण के दस चरण

– श्रीमती इन्दु कान्त जैन

आत्मा अजर, अमर है यह एक शाश्वत सत्य है। आत्मा अपने वास्तविक रूप में पूर्णतया शुद्ध और पवित्र है, किन्तु शरीर रूपी वस्त्र धारण करते ही जब वह शिशु के रूप में संसार में आती है उसी क्षण से मोह के बंधन में बंध जाती है। धीरे-धीरे मोह-माया, छल-कपट, विषय-कषाय के दलदल में फंसती चली जाती है और अपना शुद्ध रूप खो देती है। त्याग, तप और संयम द्वारा मन, वचन और कर्म को विकारों से मुक्त कर, आत्मा को फिर से उसके शुद्ध रूप में लाने का प्रयत्न दशलक्षण पर्व में किया जाता है। यही आत्म कल्याण का मार्ग है।

**"उत्तम छिमा, मारदव, आरजव भाव हैं,**
**सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग उपाव हैं।**
**आकिंचन, ब्रह्मचर्य धरम दश सार हैं,**
**चहुँगति दुखतैं काढ़ि मुकति करतार हैं।।"**

दशलक्षण पर्व के प्रथम पांच दिन व्यक्ति को क्रोध, मान, माया और लोभ इन चार विकारों का त्याग करना होता है और अपने अन्दर सत्य की स्थापना करनी होती है तथा अंतिम पांच दिन संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य की आराधना कर आत्मोन्नयन में अंग्रसर होना होता है। संयम द्वारा इन्द्रियों को वश में करने का प्रयत्न करना ही वस्तुतः तपस्या है। जिनेन्द्र प्रभु के ध्यान में लीन होकर अपने विकारों पर विजय प्राप्त करके ही आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त कर सकेगी। आत्म कल्याण के इस पर्व को किसी व्यक्ति अथवा जाति विशेष की परिधि में नहीं बांधा जा सकता है। हमारे पंच परमेष्ठियों ने जिस मार्ग पर चलकर आत्म कल्याण किया और मोक्ष पद प्राप्त किया है उसी संदेश की याद दिलाने के लिए हर वर्ष दस लक्षण पर्व आता है। यूं तो दशलक्षण पर्व वर्ष में तीन बार माघ, चैत्र और भाद्रपद मास में आता है, किन्तु भाद्रपद मास के दशलक्षण पर्व का विशेष महत्व है। यह भाद्रपद शुक्ल पंचमी से अनन्त चतुर्दशी तक दस दिन का होता है।

## आत्म कल्याण का प्रथम चरण-

**"उत्तम क्षमा"** आत्म कल्याण का प्रथम चरण है। इस संसार में आकर प्राणी क्रोध, ईर्ष्या-द्वेष, अहंकार-मद आदि विकारों से घिरा रहता है। जिसके कारण वह

दूसरों को कटु शब्द भी कहता है और स्वयं भी सारा जीवन दुख के सागर में गोते खाता रहता है। इस दिन प्रत्येक प्राणी को अपने जीवन में क्रोध के शमन का तथा दूसरों के द्वारा अपने प्रति किये गये अपकृत्यों के लिये उन्हें क्षमा करने का संकल्प धारण करना चाहिए। मन में यह विचार करें कि 'जो व्यक्ति जैसा कर रहा है उसे वैसा ही करने दो। वह जो भी कर रहा है यह उस व्यक्ति विशेष का अपना स्वभाव है। हमें अपनी सोच के अनुसार किसी को भी बदलने का हक नहीं है। इस रंग-बिरंगी दुनिया की खूबसूरती उसकी विविधता में ही है।' मन में इस विचार के आते ही समस्त दुखद परिस्थितियां और व्यक्ति विशेष द्वारा कही गई कष्टप्रद बातों की स्मृतियां अपने आप ही नष्ट हो जायेंगी। मन एकदम शान्त हो जायेगा। कहा जाता है कि हमारे ऋषि-मुनियों के शान्त स्वभाव के परिणामों के फलस्वरूप शेर भी अपनी हिंसक प्रवृत्ति छोड़कर गाय के साथ विचरण करते थे। अंगुली कुमार डाकू भी डाका डालना छोड़ सन्यासी बन गया था।

शान्त और आनन्द से भरा हुआ मन ही आत्म कल्याण का प्रथम चरण है। क्षमाशील व्यक्ति के अन्दर न तो अहंकार रहता है और न ही वैर की भावना। क्रोध भी शान्त हो जाता है। एक बार प्रेम और शान्ति का आलौकिक आनन्द अनुभव करने के पश्चात् मन उसमें ही रमता जायेगा।

## आत्म कल्याण का द्वितीय चरण-

आत्म कल्याण का द्वितीय चरण **"मार्दव भाव"** है। मान का मर्दन ही मार्दव भाव कहलाता है। अहंकारी व्यक्ति अपने को ही श्रेष्ठ मानता है। साथ ही वह कभी भी अपनी स्थिति से सन्तुष्ट नहीं रहता है। वह दूसरों को देखकर ईर्ष्या की आग में जलता रहता है और उन्हें नीचा दिखलाने का प्रयत्न करता है। अपने इस प्रयास में यदि वह सफल नहीं हो पाता है तो क्रोध की अग्नि में जलने लगता है। मनुष्य भ्रम के कारण ही अहंकार के मद में चूर है। व्यक्ति धन-सम्पत्ति, रूप-यौवन, पद-प्रतिष्ठा के कारण अहं से भर जाता है और इसी मद में चूर हो न जाने कितनों का अपमान करता है, कितनों के दिल दुखाता है। यह संसार तो नश्वर है। कुछ समय पश्चात् रूप-यौवन, धन-दौलत जब उसका साथ छोड़ देते हैं तब अहंकारी व्यक्ति के दुख में कोई सहभागी नहीं बनता। उसकी स्थिति उस ठूंठ या चीड़ के वृक्ष के समान होती है जो न तो छाया देता है न ही फल। गर्मी, सर्दी, वर्षा में अकेले ही खड़ा रहता है। मनुष्य को फल लगे वृक्ष के समान झुका हुआ और नम्र होना चाहिए। जिस प्रकार

आंधी आने पर बड़े वृक्ष ही टूटते हैं, किन्तु घास झुक जाती है पर टूटती नहीं। विपत्ति पड़ने पर अहंकारी व्यक्ति टूट जाता है, विनम्र नहीं। अतः मनुष्य को कुशा तुल्य विनम्र होना चाहिए।"

## आत्म कल्याण का तृतीय चरण-

आत्म कल्याण का तृतीय चरण **"आर्जव भाव"** अर्थात् सरलता और निष्कपटता है। संस्कारों का व्यक्ति के जीवन में बहुत महत्व होता है। अच्छे और बुरे संस्कार बालक अपने परिवार और परिवेश में रहकर ही प्राप्त करता है, किन्तु आत्मा का स्वभाव पवित्रता है। अतः छल-कपट या चोरी करने वाले व्यक्ति को भले ही दूसरा कोई न देख रहा हो, किन्तु उसकी अंतरात्मा जानती है कि 'मैं कहाँ गलत हूँ।" इसी प्रकार प्रथम बार जब कोई व्यक्ति गलत कार्य करता है तो उसके मन में अच्छे-बुरे के बीच द्वन्द चलता है, किन्तु सांसारिक मोह में फंसकर वह छल-कपट जैसे कृत्य कर बैठता है और अपनी अन्तरात्मा की आवाज नहीं सुनता। फिर एक गलती को छुपाने के प्रयास में वह कई और गलतियां करने लगता है। संसार की नश्वरता का ज्ञान होने पर ही व्यक्ति मोह-माया के भंवर से निकल सकता है। "उत्तम क्षमा" धारण करते ही मन के अन्दर से राग-द्वेष और क्रोध नष्ट होने लगता है। "उत्तम मार्दव" अहंकार शान्त करता है और "आर्जव भाव" आने पर मन में सरलता अपने आप ही विद्यमान हो जाती है। कहा भी है- "रास्ती (सरलता) है सीधी राह, रहबर (मार्गदर्शक) इसका कोई नहीं। इस राह पर चल कर, आज तक कोई भटका नहीं।"

## आत्म कल्याण का चतुर्थ चरण-

आत्म कल्याण का चतुर्थ चरण **"शौच धर्म"** शुचिता अर्थात् पवित्रता है। किन्तु यहाँ शुचिता से हमारा आशय स्नान करने या साफ-सुथरे वस्त्र पहनने से नहीं है, अपितु निर्लोभता और व्यवहार में ईमानदारी से है।

साधना के पथ पर बढ़ते हुए प्रतिदिन हमें अपने तन और मन की शुद्धि पर ध्यान देना होगा। तन की शुद्धि के लिए तो हम स्नान करके शुद्ध वस्त्र धारण करें। मन को शान्त करने के लिए प्रतिदिन एकाशन करें, व्रत रक्खें या रसी करें। यदि इतना भी सम्भव न हो, तो शुद्ध सात्विक आहार ग्रहण करें। तामसिक आहार के कारण मनुष्य के मस्तिष्क में उत्तेजना होती है तथा विचार मन्द, मलिन, अस्थिर या विकारपरक हो जाते हैं। अतः ऋषि-मुनि भी आहार शुद्धि पर विशेष ध्यान देते हैं। आत्मा को मलिन करने में विकारों का बहुत बड़ा हाथ है। अतः इस दिन हमें यह

संकल्प धारण करना चाहिए कि लोभ आदि कोई भी विकार हमारे तन, मन और आत्मा को प्रभावित न कर सके। इसके लिए ईश्वर का ध्यान और शास्त्रों का अध्ययन करें। विकारों से शुद्ध आत्मा ही आत्म कल्याण कर सकेगी।

## आत्म कल्याण का पंचम चरण-

आत्म कल्याण का पांचवा चरण **'उत्तम सत्य'** भाव है।

इस दिन हमें यह संकल्प धारण करना चाहिए कि हम किसी से भी झूठ नहीं बोलेंगे। झूठ बोलने वाला व्यक्ति सोचता है कि वह दूसरों को धोखा दे रहा है, किन्तु वह वास्तव में स्वयं अपने प्रति ही वफादार नहीं होता है। वह बार-बार झूठ बोलता है और अपने मन को समझा लेता है कि दान, धर्म के द्वारा वह अपने पापों से मुक्त हो जायेगा, किन्तु उसके मन में सारी जिन्दगी यही डर बना रहता है कि उसका झूठ दूसरों के समझ में न आ जाये। वह उसे छुपाने के प्रयत्न में कई और झूठ बोलता है। ऐसा व्यक्ति भ्रम के जाल में फंसता चला जाता है और वास्तविकता से दूर होता चला जाता है। इससे इतना तो स्पष्ट है कि कोई भी व्यक्ति अपने को झूठा कहलाना या झूठा समझा जाना पसन्द नहीं करता। साथ ही हर कोई चाहता है कि सब उससे सच ही बोलें। अतः सत्य के संकल्प को धारण करके ही आत्म कल्याण सम्भव है।

## आत्म कल्याण का षष्ठम् चरण-

आत्म कल्याण का छठा चरण है **"संयम भाव"**- संयम अर्थात् नियन्त्रण।

आज विज्ञान का युग है। मानव ने तरह-तरह की मशीनें बनाई हैं। राबॉर्ट बनाये हैं, बम बनाये हैं, किन्तु प्रत्येक चीज को कंट्रोल करने के लिए उसमें कुछ ऐसे बटन भी बनाये हैं, जो उन्हें नियंत्रित कर सकें। यदि ऐसा नहीं होता तो अनियंत्रित उपकरण कभी भी इस संसार को नष्ट कर देते। जिस प्रकार यदि कार में ब्रेक नहीं होते तो वह दुर्घटनाग्रस्त हो जाती है उसी प्रकार मानव को नियंत्रित करना भी आवश्यक है। इस संसार की चकाचौंध में फंसकर मानव मन अनियंत्रित हो जाता है। मन और इन्द्रियाँ हर चमकने वाली वस्तु के भ्रम में पड़कर उसे हासिल करने का प्रयत्न करती हैं, किन्तु मानव की स्थिति उस पतंगे के समान है जो दीपक की लौ की चमक से भ्रमित होकर उसकी तरफ बढ़ता है और जलकर नष्ट हो जाता है।

मुनि पुलक सागर जी कहते हैं- "संकल्प ले लो, विकल्प अपने आप ही खत्म हो जायेंगे। जीवन को अनुशासित करने का नाम ही संयम है।"

नियंत्रित और संयमित मन द्वारा ही आत्म कल्याण सम्भव है।

## आत्म कल्याण का सप्तम् चरण-

आत्म कल्याण का सातवाँ चरण है **"उत्तम तप"**। तप का अर्थ है तपाना या कष्ट सहना। जैन धर्म में तप का बहुत महत्व है। हमारे मुनिराज भी सर्दी, गर्मी, वर्षा में निर्वस्त्र रहकर अपने शरीर को तपाते हैं। मोह-माया की चमक से जब हम अपने मन को दूर करने का प्रयत्न करते हैं तो मन बार-बार ऐशो आराम की जिन्दगी की ओर जाना चाहता है, सांसारिकता के इस मोह से अपने मन को हटाने का प्रयत्न ही तप है। इस दिन अपनी प्रिय वस्तु का त्याग करें, शुद्ध सात्विक आहार लें, भूमि शयन करें, ईश्वर के ध्यान में रमते हुए विकारों को नियंत्रित करने का प्रयत्न करें। जिस प्रकार सोना तपकर ही शुद्ध होता है उसी प्रकार तप द्वारा ही आत्मा की शुद्धि होती है।

## आत्म कल्याण का अष्टम् चरण-

आत्म कल्याण का आठवाँ चरण है "त्याग भाव"। त्याग से तात्पर्य है-छोड़ना और दान देना। दोनों ही अर्थों में त्याग का बहुत महत्व है।

त्याग के अर्थ में हमें इस दिन अपने अन्दर के समस्त विकारों को त्याग देना चाहिए। दान के रूप में हमें भोजन, औषधि, शास्त्र और अभय दान देना चाहिए। इस संसार में जब पशु और पेड़-पौधे भी परोपकार में लगे हैं; गाय, भैंस,बकरी आदि पशु हमें दूध, घी दे रहे हैं; पेड़-पौधे हमारे जीवन के लिए अन्न, फल दे रहे हैं; नदियाँ जल देकर मानव जीवन को सींच रहीं हैं; तब मनुष्य जो इस संसार का सबसे श्रेष्ठ प्राणी माना जाता है क्यों परोपकार से विरत रहे? किन्तु वह इतना स्वार्थी हो गया है कि एक-दूसरे के खून से अपनी प्यास बुझाने लगा है। यह उचित नहीं है। यह अभीष्ट है कि हम अपने पास अपनी आवश्यकता से अधिक धन-सम्पत्ति आदि का वितरण जरूरतमंद व्यक्तियों में कर उनका भला करें और समाज में समता का वातावरण सृजित करें।

स्व-पर कल्याण में लगी आत्मा निर्वाण प्राप्त करती है। अतः इस अमूल्य जीवन के महत्व को समझें और उत्तम त्याग धारण करें।

## आत्म कल्याण का नवम् चरण-

आत्म कल्याण का नौवा चरण है **"आकिंचन भाव"**। आकिंचन अर्थात् विरक्ति का भाव।

जिस क्षण मनुष्य को यह ज्ञान प्राप्त हो जाता है कि परमात्मा और आत्मा ये दो ही शाश्वत् सत्य हैं, संसार नश्वर है, मिथ्या है, उसी क्षण मोह के ज़ाल से आत्मा मुक्त हो जाती है और सांसारिकता से पूर्णतः विरक्त हो जाती है। इस अवस्था में पहुँचने के पश्चात् मानव पर संसार में होने वाली सुखद-दुखद परिस्थितियों का प्रभाव पड़ना बन्द हो जाता है। तब कोई भी मोह उसे बाँध नहीं सकता। मनुष्य को यह ज्ञात हो जाता है कि किसी एक जीव के आने या जाने से सृष्टि-क्रम नहीं रुकता। आत्मा अलग-अलग शरीर धारण करके इस संसार में कई बार आती है।

जिस प्रकार कोई अभिनेता भिन्न-भिन्न वस्त्रों को धारण करके अलग-अलग किरदारों का अभिनय करता है और कुछ समय पश्चात् उसे भुला देता है, उसी प्रकार आत्मा भी इस संसार रूपी मंच पर कई बार जन्म लेकर अभिनय करती है। हर बार नया जन्म धारण करके पुराने को भुला देती है।

अतः व्यक्ति को मोह के बन्धन से मुक्त होकर 'आकिंचन' अर्थात् कुछ भी नहीं है मेरा, ऐसा विरक्ति भाव धारण करना चाहिए।

## आत्म कल्याण का दशम् चरण-

आत्म कल्याण का दसवाँ चरण है **"उत्तम ब्रह्मचर्य"**। आत्मा में पूर्णतः लीन होना ही ब्रह्मचर्य है।

मन, वचन और कर्म द्वारा जब आत्मा क्रम विकारों से पूर्ण रूप से मुक्त हो जाती है तो उसे ही ब्रह्मचर्य कहते हैं।

मुनि श्री पुलकसागर जी के अनुसार "जीवन की ऊँचाइयों को यदि प्राप्त करना है तो उत्तम ब्रह्मचर्य की साधना करनी पड़ेगी। साधना में इतने लीन हो जाओ कि पंचेन्द्रियाँ तुम्हारे अधीन हो जायें। दिगम्बर मुद्रा प्रमाण-पत्र है उत्तम ब्रह्मचर्य का। बिना वस्त्र के भी उसमें चरित्र का आवरण होता है। वस्त्र वासनाओं को छिपाने के लिए पहने जाते हैं, किन्तु जो वासनाओं का त्याग कर देता है उसे वस्त्रों की आवश्यकता ही नहीं पड़ती है।"

मन को साधना ही ब्रह्मचर्य है, तन को नहीं। मन को पवित्र करने वाला यह महाव्रत ही मोक्ष की अन्तिम सीढ़ी है।

हर वर्ष आने वाला यह दस लक्षण पर्व, हम आत्माओं को यह स्मरण करवाता है, कि पंच परमेष्ठियों द्वारा निर्देशित इस मार्ग पर चलकर ही आत्म कल्याण सम्भव है।

**-२१, दुली मुहल्ला, गुबरैला स्ट्रीट, फिरोजाबाद**

शोध टीप

# वनस्पति : धर्म एवं विज्ञान के भ्रम

– श्री अजित जैन 'जलज'

"डॉ. जगदीश चन्द्र बसु ने 'वनस्पतियों में जीवन' को सिद्ध करके एक महान काम किया था जबकि जैनागम वनस्पतियों में जीवन सदियों से कहता एवं मानता आया है।"

यह कथन पिछले अनेक वर्षों से मैं लगातार सुनता एवं पढ़ता आ रहा हूँ। इस विषय पर पिछले वर्षों में मैंने सतत चिन्तन-मनन एवं शोध किया है, परंतु इस पर लिखित शोध सामने रखने के पूर्व मैं देश के प्रबुद्ध विचारकों से निम्नांकित बिंदुओं पर विचार आमंत्रित करना चाहता हूँ जिससे कि शोध को समुचित दिशा दी जा सके-

१. 'डॉ. बसु ने वनस्पतियों में जीवन की खोज की।' यह कथन किस पुस्तक में दिया गया है ? मुझे तो वनस्पतियों पर बसु का उक्त कार्य वनस्पति विज्ञान में स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त कर लेने पर भी आज तक नहीं दिख सका।

२. वनस्पतियों को पशु-पक्षियों एवं मनुष्यों के समकक्ष बनाकर के शाकाहारी जैनों को लाभ हुआ है या फिर मांसाहारियों को एक जबर्दस्त वैज्ञानिक बहाना मिला है ?

३. त्रस और स्थावर की स्पष्ट विभाजन रेखा के द्वारा जैनागम में वनस्पति, पृथ्वी, अग्नि, वायु, जल के साथ स्थिर है तथा स्थावर हिंसा अपरिहार्य होने से शाकाहार पूर्णतः अहिंसक आहार में सम्मिलित है जिसके पर्याप्त वैज्ञानिक तथा धार्मिक प्रमाण हैं, परंतु डॉ. बसु की इस तथाकथित खोज का कतिपय लोगों ने जानबूझकर और कुछ ने अनजाने में लगातार दुरुपयोग किया है। अतः क्या इस पर पुनर्चिंतन की आवश्यकता नहीं है ?

४. क्या यह वैज्ञानिक एवं धार्मिक सत्य है कि जीवन के विभिन्न क्रियाकलापों में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से विभिन्न स्थावर जीवों का सतत घात होता रहता है ?

५ क्या हमें वनस्पतियों को त्रस जीवों—कीड़ों-मकोड़ों, पशु-पक्षियों, मनुष्यों के समकक्ष बनाकर प्रचारित करना चाहिये या फिर वनस्पतियों के विभिन्न भेदों में भक्ष्याभक्ष्य का बड़ा भारी अंतर करके शाकाहार की शक्ति को कमजोर करना चाहिए ?

६. जैनागम के अनुसार हमें त्रस घात का त्याग करके क्रमशः अहिंसक आचरण पर अग्रसर होना चाहिए, फिर भी सामान्य श्रावक के गृहस्थावस्था में अनेक समयानुकूल सुधार/विकार को क्षम्य माना है। परंतु वर्तमान में एकांगी अतार्किक सोच के चलते कृत, कारित या अनुमोदना से त्रस हिंसा में संलग्न व्यक्तियों को महिमा मंडित कर दिया जाता है तथा स्थावर हिंसा के कुछ रूपों को छोड़ने की प्रतिज्ञाएं कराई जाती हैं ? क्या यह उचित है ?

७. जीवित पंचेन्द्रिय पशुओं की खाल उधेड़कर निकाले गये चमड़े के प्रति जितना तटस्थ तथा स्वीकार्य भाव हमारे समाज में है उतना ही सक्रिय एवं निषेध भाव आलू, गाजर एवं मूली के प्रति विद्यमान दिखता है। क्या यह उचित है ?

**-वीर मार्ग, ककरवाहा, टीकमगढ़**

---

# गीत

एक फूल है खिला, एक में उभार है,
एक धूल में मिला, दूसरा तैयार है,
जो डाल का सिंगार है।
एक बुलबुला उठा, जिन्दगी संवर गई।
रूप नव निखर चला, माधुरी बिखर गई।
मन मचल-मचल उठा, छा गया खुमार है।।
प्यार का नशा बढ़ा, सांस तक महक गई।
पांव लड़खड़ा उठें, साधना बहक गई।
पुण्य रूठ-सा गया, रह गया विकार है।।
एक यूं हवा बही, हम विवस्त्र हो गए।
जीव मुक्त हो चला, अश्रु-कण ढुलक गए।
रुद्ध श्वास-बीन का, मौन तार-तार है।।
छोड़ देह-जाल को, उड़ चला खगेश है।
मौन काफिला चला, याद रही शेष है।
जोर कुछ चला नहीं, हो गई पुकार है।।
एक फूल है खिला, एक में उभार है
एक धूल में मिला, दूसरा तैयार है।।
जो डाल का सिंगार है।

**- डॉ. गणेशदत्त सारस्वत**
**सारस्वत-सदन, सिविल लाइंस, सीतापुर २६१००१**

# तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र.
# प्रगति प्रतिवेदन वर्ष २००७-२००८

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र., का गठन सन् १९७६ ई. में २४वें तीर्थंकर भगवान वर्धमान महावीर स्वामी का २५००वां निर्वाण महोत्सव वर्ष मनाने के लिए राज्य सरकार द्वारा गठित श्री महावीर निर्वाण समिति, उ.प्र., की उत्तराधिकारी संस्था के रूप में जैन धर्म की सभी आम्नायों के महानुभावों के सहयोग से किया गया था तथा गठन के तुरन्त बाद ही उसे सोसायटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम के अन्तर्गत रजिस्टर्ड करा लिया गया था जिसका नियमानुसार नवीकरण कराया जाता रहा है। समिति का पिछला प्रगति प्रतिवेदन (वर्ष २००६-२००७) शोधादर्श-६२ (जुलाई २००७) के पृष्ठ ६७-७२ पर प्रकाशित है। यहां वर्ष २००७-२००८ (१ अप्रैल, २००७ से ३१ मार्च, २००८) का प्रगति प्रतिवेदन प्रस्तुत है।

आलोच्य वर्ष में समिति की प्रवृत्तियों की प्रगति निम्नवत रही :-

## १. तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र शोध पुस्तकालय

पुस्तकालय की स्थापना वर्ष १९७६ की श्रुत पंचमी को की गई थी और इसका विधिवत उद्घाटन २३ अक्टूबर, १९७६ को प्रदेश के तत्कालीन ग्राम्य विकास मंत्री माननीय डॉ. रामजीलाल सहायक के करकमलों से सम्पन्न हुआ था। पुस्तकालय और उससे संलग्न वाचनालय श्री मुन्नेलाल कागजी धर्मशाला ट्रस्ट द्वारा भूतल पर किराये पर उपलब्ध कराये गये कक्षों में चल रहा है। समिति के सदस्यों के अतिरिक्त पुस्तकालय के अपने सदस्यों की संख्या ७४ रही। चारबाग ही नहीं, आसपास की कॉलोनियों के जैन परिवार तथा अनेक जैनेतर जिज्ञासु महानुभाव भी पुस्तकालय के सदस्य हैं। पुस्तकालय में जैन धर्म, दर्शन, संस्कृति आदि के अध्ययन हेतु जैन धर्म की सभी आम्नायों का साहित्य तथा शोधार्थियों द्वारा तुलनात्मक अध्ययन के लिए अन्य भारतीय धर्मों, दर्शनों एवं संस्कृति से सम्बन्धित महत्वपूर्ण साहित्य है। अपने विशिष्ट संकलन के लिये इन विषयों के शोधार्थी पाठकों में हमारा पुस्तकालय विशेष लोकप्रिय है तथा लखनऊ व कानपुर विश्वविद्यालय से सम्बद्ध अनेक शोध छात्र इससे लाभ उठाते हैं। सामान्य रुचि के पाठकों के लिए लौकिक एवं सामान्य ज्ञानवर्धक साहित्य भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है।

वर्ष २००७-०८ में पुस्तकालय में ४६० पुस्तकों की वृद्धि हुई जिनमें से ४०५ पुस्तकें राजा राममोहनराय पुस्तकालय प्रतिष्ठान कोलकाता से प्रदेश सरकार के शिक्षा विभाग (पुस्तकालय कोष्ठक) के माध्यम से पुस्तक अनुदान के रूप में प्राप्त हुईं। शेष पुस्तकें अन्य महानुभावों से भेंटस्वरूप प्राप्त हुईं।

शोध पुस्तकालय के वाचनालय में ६४ धार्मिक, सामाजिक, सामयिक एवं शोध पत्र-पत्रिकाएं (साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक, चातुर्मासिक और षट्मासिक) समिति की शोध-पत्रिका 'शोधादर्श' के परिर्तवन में प्राप्त हुईं।

पुस्तकालय-वाचनालय से प्रतिदिन प्रायः ५० पाठक लाभ उठाते हैं। पुस्तकालय-वाचनालय का समय प्रातः ६.०० से अपराह्न २.०० बजे तक है। शनिवार और सार्वजनिक अवकाश पर पुस्तकालय-वाचनालय बन्द रहता है। पुस्तकालय-वाचनालय का कार्य पूर्ववत पुस्तकालय व्यवस्थापिका श्रीमती हेमा सक्सेना, एम.ए., द्वारा सुचारु रूप से देखा जाता रहा।

## २. शोधादर्श

जैन विद्या की शोध को समर्पित चातुर्मासिक शोध-पत्रिका 'शोधादर्श' का प्रकाशन फरवरी १९८६ में समिति द्वारा प्रथम अंक के प्रकाशन से प्रारंभ किया गया था। इसके आद्य सम्पादक इतिहास-मनीषी विद्यावारिधि डॉ. ज्योति प्रसाद जैन थे। जून १९८८ में उनके स्वर्गवास के उपरान्त अंक ७ से प्रधान सम्पादक का उत्तरदायित्व डॉ. शशि कान्त ने बड़ी योग्यता से निभाया तथा अंक ३० (नवम्बर १९८६) से अंक ५६ तक प्रधान सम्पादक का कार्यभार श्री अजित प्रसाद जैन ने बड़ी कुशलता पूर्वक संपादित किया। इस पत्रिका के सम्पादन से यद्यपि मैं प्रारम्भ से ही सम्बद्ध रहा, आदरणीय श्री अजित प्रसाद जैन के निधन के उपरान्त अंक ५७ (नवम्बर २००५) से इसके सम्पादन का सम्पूर्ण दायित्व मैं डॉ. शशि कान्त जी के मार्गदर्शन तथा सर्वश्री नलिन कान्त जैन, सन्दीप कान्त जैन एवं अंशु जैन 'अमर' के सहयोग से निर्वहन कर रहा हूँ। यह सन्तोष का विषय है कि पत्रिका की लोकप्रियता में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है तथा आज यह पत्रिका देश की उच्च स्तरीय धार्मिक-सांस्कृतिक शोध पत्रिकाओं में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। समय से प्रकाशित वर्ष के तीनों अंकों (६१-६२-६३) में २८२ पृष्ठों में प्रकाशित ज्ञानप्रद, उपयोगी पठनीय सामग्री की प्रबुद्ध वर्ग द्वारा व्यापक सराहना हुई है। शोधादर्श में निहित निर्भीक बेबाक टिप्पणियों, शोधपूर्ण सामग्री तथा इसकी सादगीपूर्ण छवि से प्रभावित हो कुछ प्रशंसक पाठकों ने इस वर्ष रु. २,८७७/- की राशि भेंटस्वरूप प्रदान की जिनमें उल्लेखनीय हैं- श्रीमती त्रिशला जैन (लखनऊ), श्री हुकमचन्द जैन (मेरठ), श्रीमती इन्दु कान्त जैन (फिरोजाबाद), श्री शान्तीलाल जैन बैनाड़ा (आगरा), डॉ. विनय कुमार जैन (लखनऊ), वैद्य राजेश चन्द्र जैन (अलीगंज एटा), डॉ. अनिल कुमार जैन (अहमदाबाद), श्री कैलाश नारायण टण्डन (कानपुर) तथा श्री लूणकरण नाहर जैन (लखनऊ)। अनेक गण्यमान्य विद्वान लेखक-रचनाकार इसमें अपने लेख-रचना आदि प्रकाशित होना अपना अहोभाग्य मानते हैं और पत्र-पत्रिकाएं इसमें प्रकाशित सामग्री को उद्धृत करने में गौरव का अनुभव करती हैं।

## ३. तीर्थंकर छात्र सहायता कोष

इस वर्ष आर्थिक दृष्टि से निर्बल ५० छात्र-छात्राओं को अध्ययन जारी रखने हेतु आंशिक सहायता प्रदान करने पर रु. १८,६७५/- का व्यय किया गया। हमारे उप मंत्री श्री महेन्द्र प्रसाद जी ने इस कार्य के सम्पादन में बहुमूल्य योगदान किया जिसके लिए मैं उनका विशेष आभारी हूँ।

## ४. महावीर जन कल्याण निधि

इस वर्ष तीन असहाय धर्मनिष्ठ महिलाओं को वस्त्र-औषधि हेतु सहायता प्रदान करने पर रु. १,७६०/- का व्यय किया गया। हमारे संयुक्त मंत्री श्री नलिन कान्त जी ने इस निधि का कार्य सम्पादन करने में बहुमूल्य योगदान किया जिसके लिये मैं उनका आभारी हूँ।

## ५. अन्य प्रवृत्तियां

ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी, १६ जून, २००७ ई. को 'श्रुत पंचमी पर्व और शोध स्थपना दिवस' तथा २५ जून, २००७ ई. को तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति के संस्थापक-महामंत्री स्व. श्री अजित प्रसाद जैन की द्वितीय पुण्यतिथि श्री लूणकरण नाहर जैन की अध्यक्षता में मनायी गयी। १ जनवरी, २००८ ई. को संस्थापक-महामंत्री स्व. श्री अजित प्रसाद जैन का उनके ९१वें जन्म दिन पर पुण्य स्मरण किया गया।

दिनांक २७ जुलाई, २००७ ई. को जिला विद्यालय निरीक्षक, लखनऊ, को वर्ष २००६-२००७ के अनुदान हेतु निर्धारित प्रपत्र पर प्रार्थना पत्र भेजा गया। दिनांक १० अक्टूबर, २००७ ई. को वित्तीय वर्ष २००६-०७ (असेसमेन्ट वर्ष २००७-०८) का इनकम टैक्स रिटर्न जमा किया गया। दिनांक ११ जनवरी, २००८ को रजिस्ट्रार, सोसायटीज, उ.प्र., लखनऊ को प्रबन्ध समिति की वर्ष २००८ की सूची प्रेषित की गई। दिनांक १७ फरवरी, २००८ ई. को राजा राममोहन राय पुस्तकालय प्रतिष्ठान के क्षेत्रीय अधिकारी श्री बी.एस. पोसवाल द्वारा पुस्तकालय का निरीक्षण किया गया। दिनांक १८ फरवरी, २००८ को उ.प्र. कोआपरेटिव बैंक, नाका हिण्डोला, लखनऊ में फार्म १५-जी दाखिल किया गया।

## ६. लेखे की स्थिति

समिति के लेखों का आडिट इस वर्ष भी श्री आलोक जिन्दल चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट, द्वारा किया गया और उनके माध्यम से आयकर कार्यालय विवरणी प्रस्तुत की गई।

शासन से प्राप्त उपर्युक्त पुस्तक अनुदान तथा कतिपय दाताओं से भेंट स्वरूप प्राप्त साहित्य के अतिरिक्त कुल प्राप्तियां वर्ष में रु. १,५१,१६८-७६ पैसे रही (इसमें रु. ६००/- पुस्तकालय सिक्योरिटी मनी भी है जो रिफन्डेबिल है) तथा व्यय रु.

८०,६४४-५० पैसा हुआ (इसमें पुस्तकालय-वाचनालय कक्षों का रु. ८००/- प्रति मास की दर से किराया रु. ६,६००/- सम्मिलित नहीं है क्योंकि उसका समायोजन श्री मुन्नेलाल कागजी धर्मशाला ट्रस्ट को पूर्व में दी गई एक लाख रुपये की अग्रिम राशि से होता है)। प्राप्ति-व्यय की विवरण तालिका संलग्न है।

समिति के शोध पुस्तकालय में वर्ष के अन्त में ३१ मार्च, २००८ ई. को दो लाख रुपये से अधिक मूल्य का साहित्य एवं फर्नीचर आदि उपलब्ध रहा।

## चिरवियोग

इस वर्ष 'शोधादर्श' पत्रिका से अनुराग रखने वाले उसके कई प्रबुद्ध पाठक-लेखक उससे सदा के लिए बिछुड़ गये। उनमें उल्लेखनीय हैं- २३ मई, २००७ ई. को इंदौर में पं. फूलचन्द जैन शास्त्री; ३० जून को जबलपुर में प्रो. प्रफुल्ल कुमार मोदी; १६ जुलाई को जयपुर में पं. ज्ञानचन्द बिल्टीवाला; ६ सितम्बर को इन्दौर में पं. नाथूलाल शास्त्री; १० सितम्बर को लखनऊ में डॉ. शैलेन्द्र कुमार रस्तोगी; ३० सितम्बर को नई दिल्ली में श्री पारस दास जैन; ६ अक्टूबर को डॉ. लक्ष्मीमल सिंघवी; १६ अक्टूबर को कोयम्बतूर में डॉ. रवीन्द्र कुमार जैन; १८ दिसम्बर को अजमेर में श्री जीतमल चोपड़ा; २३ दिसम्बर को लखनऊ में अपनी समिति और उसकी प्रबन्ध समिति के सम्माननीय सदस्य डॉ. नेमीचन्द्र जैन (शंकर नगर); उसी दिन चारबाग लखनऊ में श्री धनेन्द्र कुमार जैन (धन्नी बाबू); १५ फरवरी, २००८ ई. को जयपुर में पं. अनूपचन्द जैन न्यायतीर्थ तथा १६ फरवरी को इन्दौर में श्री देवकुमार सिंह कासलीवाल। इन सभी दिवंगत आत्माओं द्वारा समय-समय पर शोधादर्श को दिये गये सक्रिय सहयोग को स्मरण करना अभीष्ट है।

## आभार

समिति के अध्यक्ष सम्माननीय श्री लूणकरण जी नाहर का सक्रिय सहयोग एवं मार्गदर्शन मुझे निरन्तर मिलता रहा जिसके लिये मैं उनका विशेष आभारी हूँ। उपाध्यक्ष श्री कन्हैयालाल जी एवं श्री नरेश चन्द्र जी, कोषाध्यक्ष श्री बिजयलाल जी, संयुक्त मंत्री श्री नलिन कान्त जी, उपमंत्री श्री महेन्द्र कुमार जी और श्री रोशन लाल जी नाहर, शोधादर्श के सलाहकार डॉ. शशि कान्त जी एवं सह-सम्पादक श्री सन्दीप कान्त जैन व श्री अंशु जैन 'अमर' तथा प्रबन्ध समिति के सभी माननीय सदस्यों के सौहार्दपूर्ण सहयोग के लिए मैं आभारी हूँ।

समिति के कार्यों में जो कुछ भी प्रगति हुई उसका श्रेय इन सब महानुभावों को है और जो त्रुटियां रह गईं उनक दायित्व मुझ पर है।

**- रमा कान्त जैन, महामंत्री**

# TIRTHANKAR MAHAVIR SMRITI KENDRA SAMITI, U. P.

## STATEMENT OF RECEIPTS & PAYMENTS FOR THE YEAR ENDING 31st MARCH, 2008

| *RECEIPTS* | *Rs. P.* | | *PAYMENTS* | | *Rs. P.* |
|---|---|---|---|---|---|
| Balance b/d: | | | Research Library: | | |
| F.D.R.s | 1881170.00 | | Salary Libr. Asstt | 23700.00 | |
| Savings Bank | 4918.61 | | Salary Cleaner | 1770.00 | |
| Cash in Hand | 12140.60 | 1898229.21 | Contingencies | 984.00 | |
| Research Library: | | | Stationery & Prtg. | 860.50 | |
| Security Deposit | 600.00 | | Postage | 538.00 | 27852.50 |
| Subscription | 1260.00 | | Magazine Expenses | | 31057.00 |
| Misc. Receipts | 330.50 | 2190.50 | M.J.K. Nidhi Expenses | | 1760.00 |
| Magazine: | | | T.C.S.Kosh Scholarship Exp. | | 18675.00 |
| Subscription | 3540 | | I.T. Counsel's Fee | | 650.00 |
| Donation | 2877 | 6417.00 | Audit Fee | | 650.00 |
| Membership Fee | | 102.00 | Balance c/d: | | |
| Interest on F.D.R.s | | 139009.29 | F.D.R.s | 1929731.00 | |
| Interest on Savings Bank | | 1285.00 | S.B.Account | 27327.90 | |
| Scholarship Amt. received back undelivered | | 1940.00 | Cash in Hand | 11694.60 | 1968753.50 |
| Postage stamps recd. with Scholarship Forms | | 225.00 | | | |
| | | 2049398.00 | | | 2049398.00 |

Compiled on the basis of information and explanations furnished.

Lucknow, June18, 2008

रमा कान्त जैन
महामंत्री
तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति

For Avanish K. Rastogi & Associates
Chartered Accountants
Alok Jindal Partner.

# महावीर उतरो जीवन में

आज पुनः हे महावीर
उतरो जीवन में,
बस जाओ तुम
तन मन प्राणों में चेतन में।
तीर्थंकर भगवान वीर
तुम सबके स्वामी,
प्राणों में हो बसे तुम्ही
हे अन्तर्यामी,
तुम को भूल न
अपने आतम को लख पाये,
अपने ही कर्मों के बन्धन
काट न पाये,
अब न आस तुम बिन प्रभु
कोई जीवन में।
आज पुनः हे महावीर
उतरो जीवन में।
बस जाओ तुम तन मन
प्राणों में चेतन में।
व्याकुल व्यथित प्राण
पीड़ा से तुम्हें पुकारें,
अश्रु भरे ये नयन
तुम्हारी ओर निहारें,
आज सभी जीवों को
करुणा मिले तुम्हारी,
आत्म ज्योति से विकसित हो
जीवन सुखकारी,
आत्म ज्ञान प्रभुवर अपना
भर दो जीवन में,
आज पुनः हे महावीर
उतरो जीवन में,
बस जाओ तुम तन मन
प्राणों में चेतन में।
तुम्हें भूल यह जीवन
दुख की राह बन गया,
पीड़ा मय जीवन भव-सिंधु
अथाह बन गया,
अपने ही बंधन अब
सहन नहीं होते,
किये पाप जो हमने
वहन नहीं होते,
भर दो अपनी कृपा
पुनः नीरस जीवन में।
आज पुनः हे महावीर
उतरो जीवन में।
बस जाओ तुम तन मन
प्राणों में चेतन में।
कहां खो गई प्रभु
तुम्हारी सुखमय वाणी
सब भाषा गर्भित महान
मधुमय कल्याणी,
जड़ चेतन पशु पक्षी
सब को शांति मिली थी,
विक्षोभ पूर्ण जीवन पथ पर
विश्रांति मिली थी,
सम्यक्दर्शन ज्ञान चरित
भर दो जीवन में।
आज पुनः हे महावीर
उतरो जीवन में।

बस जाओ तुम तन मन
प्राणों में चेतन में।
जग के सुख वैभव केंचुल
को तुमने त्यागा,
बने अचिर परम दिगम्बर
आत्म परागा,
हमने सुख से ग्रहण
कर लिया त्याज्य तुम्हारा,
निष्फल सा कर दिया
सतत वैराग्य तुम्हारा,
मुक्त करो प्रभु
अब तो हमको कर्म दहन से।
आज पुनः हे महावीर
उतरो जीवन में।
बस जाओ तुम तन मन
प्राणों में चेतन में।

कंचन-शासित हृदय हुए
अब दुखी हमारे,
अब तो प्रभुवर एक मात्र
बस तुम्हीं सहारे,
तुम को छोड़ न दूजा
प्रभुवर अब हितकारी,
आया मैं निष्काम भाव से
शरण तुम्हारी,
कर लो स्वयं समान
आत्म रस दे जीवन में।
आज पुनः हे महावीर
उतरो जीवन में।
बस जाओ तुम तन मन
प्राणों में चेतन में।

**- डॉ. महावीर प्रसाद जैन 'प्रशांत'**
**डी-११/६, राजेन्द्र नगर, लखनऊ-४**

## शोक संवेदन

२८ अप्रैल, २००८ ई. को नयी दिल्ली में हिन्दी की सुप्रसिद्ध कवियित्री एवं लेखिका ७२ वर्षीया **श्रीमती इंदु जैन** का निधन हो गया।

१ मई को नयी दिल्ली में प्रख्यात गांधीवादी विचारक एवं समाज सेवी ७६ वर्षीया **सुश्री निर्मला देशपाण्डे** दिवंगत हो गईं।

२५ मई को दिल्ली में ग्वालियर निवासी धर्मनिष्ठ उद्योगपति म. प्र. प्रान्तीय महासभा के संरक्षक **श्री पारस कुमार गंगवाल** का स्वर्गवास हो गया।

६ जुलाई को प्रसिद्ध उद्योगपति, समाजसेवी, ७३ वर्षीय **साहू शरद कुमार जैन** का निधन हो गया।

जुलाई मास में ही इन्दौर में कर्मठ समाजसेवी धर्मनिष्ठ श्रावक **श्री कैलाशचन्द्र चौधरी** नहीं रहे।

**शोधादर्श परिवार उपर्युक्त दिवंगत महानुभावों को अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है, उनकी आत्मा की चिर शान्ति और सद्गति के लिये जिनेन्द्रदेव से प्रार्थना करता है तथा शोक संतप्त उनके स्वजनों-परिजनों के प्रति हार्दिक संवेदना व्यक्त करता है।**

# इक्कीसवीं शताब्दी के एक दूरदृष्टा समाजोद्धारक संत

**- श्री सन्दीप कान्त जैन**

जैन दर्शन में चरण नहीं आचरण का महत्व है, चर्या की दृष्टि से पूर्णरूपेण खरे उतरने वाले चारित्र-शिरोमणि महान प्रभावक उपाध्याय ज्ञानसागर जी हमारे बीच इस कलिकाल में भी उपस्थित हैं और देश, समाज के प्रत्येक वर्ग व क्षेत्र के उत्थान में अपने महत्वपूर्ण दिशा निर्देशों द्वारा प्रयासरत रहते हुए अपने आत्म-कल्याण की साधना में रत हैं। यह हमारा सौभाग्य है, और यह अहोभाग्य कि वह इस वर्ष मई में ५१ वर्ष पूर्ण कर चुके हैं।

सन् १९५७ ई० की १ मई को मुरैना जिले में श्री शाँतिलाल व माता श्रीमती अशर्फीदेवी के गृह में जन्मे इस संत ने जहाँ अपने जीवन को रत्नत्रय से मंडित कर आत्म-साधना की, वहीं सत्य, संगठन, सदाचार, शाकाहार का प्रचार कर जिनधर्म की महती प्रभावना की।

मई १९९५ ई. में सहारनपुर में संपन्न राष्ट्रीय जैन विज्ञान संगोष्ठी के दौरान हुए प्रथम दर्शन में ही उपाध्यायश्री ने अपनी सरल व जैन साध्वोचित चर्या, सौम्य-मधुरिम व्यवहार तथा प्रभावक, मीठे सरल भाषा में दिए गए समाजोपकारी प्रवचनों से मुझे यह अहसास दिला दिया था कि यह कोई महान साधु हैं। बाद में जैसे-जैसे उनके बारे में ज्यादा जाना तथा विभिन्न महत्वपूर्ण व्यक्तियों के उनसे संबंधित संस्मरणों को पढ़ा, तो मन में उनके प्रति श्रद्धा और भी बढ़ गई।

वह विद्वान, कुशल वक्ता तो हैं ही, साथ ही उपाध्यायश्री के मन में अपने समाज, देश व जन-जन के प्रति इतना करुणाभाव-दयाभाव व समर्थन है कि उनकी हर सोच में समाज का, देश का एवं जन-जन का कल्याण निहित है। सभी को एक साथ जोड़कर चलने में उनका कोई सानी नहीं, चाहे वह अधिकारी हों, डाक्टर-इंजीनियर हों, वकील-जज हों, देश की राजनीति में लगे जैन बन्धु हों और चाहे समाज के आज के पढ़ने-लिखने वाले बच्चे ही क्यों न हों। महाराज श्री इन सब राजनीतिक एवं अधिकारी वर्ग को एक मंच पर अधिवेशन व गोष्ठी के माध्यम से एक सूत्र में पिरोते हैं और समाज-कल्याण की प्रेरणा देते हैं। आज के पढ़ने लिखने वाले बच्चों को कैरियर काउंसलिंग व ज्ञान-संस्कार प्रशिक्षण शिविरों के माध्यम से उनके जीवन में सही दिशा के लिए शिक्षा बोध भी कराते हैं और प्रतिभा सम्मान समारोह के द्वारा उन्हें

प्रोत्साहित भी करते हैं। उनका मानना है कि जिस समाज के बच्चे शिक्षित होंगे वही अपने परिवार, समाज व देश को ऊंचा उठाने में सफल होगा। सराक-उत्थान तो उपाध्यायश्री का बहुत बड़ा योगदान है। आज यदि बिहार-बंगाल-उड़ीसा के सराकों में सदियों से विस्मृत श्रावकाचार पुनः जागृत हआ है, उनका सामाजिक/आर्थिक उत्थान हुआ है और इस हेतु समाज में कुछ जागृति आई है, तो इसका लगभग पूरा श्रेय उपाध्यायश्री को ही है। संत प्रवर की दूरदृष्टि उपेक्षित तीर्थक्षेत्रों, प्राचीन ग्रंथों एवं पुरातत्व आदि के उद्धार पर भी गई। वह समय-समय पर इन विषयों से संबधित गोष्ठी आदि करके जरूरी दिशा-निर्देश देकर समाज को जागृत करते रहते हैं। उनकी प्रेरणा से जिनवाणी के उपासकों को प्राचीन, उपयोगी, अनुपलब्ध साहित्य उपलब्ध करवाने के लिए 'श्रुत संवर्द्धन संस्थान' की मेरठ में स्थापना की गई है। विद्वानों से तो उन्हें विशेष लगाव है और वह उन्हें पूर्ण सम्मान, स्नेह, प्रोत्साहन एवं दिशा-निर्देश देते रहते हैं। उनके सानिध्य में प्रायः विद्वत्-गोष्ठियां किसी न किसी गूढ़, उपयोगी विषय पर होती रहती हैं। विद्वानों को जिनवाणी-सेवा में प्रोत्साहन हेतु उनकी प्रेरणा से प्रवर्तित प्रतिवर्ष पांच "श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार" दिए जाते हैं।

इन सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि उपाध्यायश्री इन सभी गतिविधियों/संस्थाओं के प्रेरक-दिशानिर्देशक होते हुए भी इन संस्थाओं की गतिविधियों के सक्रिय संचालन से वीतरागी की भांति प्रायः विरत रहते हैं ।उनका तो एक ही ध्येय है-धर्म, समाज एवं संस्कृति का संरक्षण एवं संवर्धन। उनके पावन चरणों में बारंबार नमन् करते हुए वीर प्रभु से प्रार्थना है कि ऐसे समाजोपकारक संत स्वस्थ रहते हुए दीर्घायु होकर धर्म-वृद्धि करें और समाज के पथ-प्रदर्शक बने रहें।

**- ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ**

---

जैन विद्या संस्थान, श्री महावीर जी, के वर्ष २००८ के महावीर पुरस्कार एवं ब्र. पूरणचन्द रिद्धिलता लुहाड़िया पुरस्कार हेतु ३१ दिसम्बर, २००५ के पश्चात् प्रकाशित जैन धर्म, दर्शन, इतिहास, साहित्य, संस्कृति से सम्बन्धित किसी भी विषय की पुस्तक/शोध-प्रबन्ध की चार प्रतियां तथा अपभ्रंश साहित्य अकादमी, जयपुर के वर्ष २००८ के स्वयंभू पुरस्कार हेतु ३१ दिसम्बर, २००५ के पश्चात् प्रकाशित और अब तक अपुरस्कृत अपभ्रंश से सम्बंधित विषय पर हिन्दी या अंग्रेजी में रचित रचनाओं की चार प्रतियां **३० सितबर, २००८** तक आमंत्रित हैं।

इन पुरस्कारों की नियमावली एवं आवेदन पत्र प्रारूप संस्थान/अकादमी कार्यालय दिग. जैन नसियां भट्टारक जी, सवाई रामसिंह रोड, जयपुर-४ से प्राप्त होंगे।

# साहित्य-सत्कार

**(१) श्रवणबेलगोल-चन्द्रगिरि-अभिलेख (भारतीय दिगम्बर जैन अभिलेख और तीर्थ परिचय भाग-द्वितीय)** : सम्पादन तथा हिन्दी भावार्थ लेखन- डॉ. कस्तूरचन्द्र जैन 'सुमन'; प्र. श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन (तीर्थ संरक्षिणी) महासभा, श्री नन्दीश्वर फ्लोर मिल्स कम्पाउण्ड, मिल रोड, ऐशबाग, लखनऊ-२२६००४; प्र.सं. मार्च २००६; पृ. ३१०; मूल्य रु. १००/-

प्राचीन भवनों-मन्दिरों आदि की दीवारों आदि पर प्राचीन काल में उत्कीर्ण कराये गये लेख भी हमारे अतीत को जानने का एक महत्वपूर्ण साधन सिद्ध हो सकते हैं, समझकर उन्नीसवीं शती ईस्वी में कुछ साहसी पुरातत्त्वप्रेमी ब्रिटिश अधिकारियों ने निर्जन स्थानों में भी अकस्मात दृष्टिपथ में आये ऐसे लेखों को पढ़ने और प्रकाशित करने का उपक्रम किया। परिणामतः जनमानस में विस्मृत हो चुके **हाथी गुम्फा अभिलेख** (उड़ीसा में भुवनेश्वर के निकट उदयगिरि-खण्डगिरि पहाड़ी पर) और **भब्रु लेख** (राजस्थान में बैराट नगर के पीछे अवस्थित बीजक पहाड़ के शिखर की शिला पर) सदृश पुरा अभिलेख प्रकाश में आये और भारतवासी जैन धर्मानुयायी कलिंगराज खारवेल और मौर्य सम्राट अशोक के बौद्ध धर्म सम्बन्धी अनुराग आदि के सम्बन्ध में कुछ जान सके। उसी कड़ी में मैसूर में नियुक्त पुरातात्विक अनुसन्धानों के निदेशक बी. लुइस राइस का नाम भी है जिन्होंने कर्णाटक में समीपवर्ती स्थानों का निरीक्षण करते समय श्रवणबेलगोल और उसके आसपास के क्षेत्र में संज्ञान में आये पुरा अभिलेखों का संकलन किया और उन्हें सन् १८८६ ई. में **'एपिग्राफिआ कर्णाटिका'** के नाम से प्रकाशित किया। उक्त संकलन में १४४ पुरा अभिलेखों का प्रकाशन हुआ था। तदनन्तर सन् १९२२ ई. में उक्त पुरातत्त्व विभाग के तत्कालीन निदेशक प्राक्तन विमर्श विचक्षण राव बहादुर नरसिंहाचार ने श्रवणबेलगोल के सब लेखों की पुनः सूक्ष्मतः जांच की व परिश्रम पूर्वक खोज करके अन्य सैकड़ों लेखों का पता लगाया और ५०० लेखों का एक परिवर्द्धित संस्करण **'एपिग्राफिआ कर्णाटिका'** का प्रकाशित किया। इस संस्करण को उन्होंने विशद् भूमिका से भी सज्जित किया जिसमें समस्त स्मारकों का वर्णन और लेखों के ऐतिहासिक महत्व का विवेचन किया गया। चूंकि कर्णाटक के पुरा अभिलेखों के ये दोनों संग्रह कन्नड और रोमन लिपि में प्रकाशित थे और उनका मूल्य भी अधिक था, अनेक इतिहास प्रेमी उनका लाभ उठाने से वंचित रहे। संयोग से श्रवणबेलगोल और उसका समीपवर्ती क्षेत्र प्राचीन काल से जैन धर्म-संस्कृति का सुदृढ़ गढ़ रहा।

अतः वहाँ से प्राप्त पुरा अभिलेख उक्त क्षेत्र में हुई अनेक धार्मिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक और राजनैतिक गतिविधियों के ऐतिहासिक प्रमाण का कार्य करते हैं। उनकी इस महत्ता को लक्षित कर पं. नाथूराम प्रेमी ने सन् १९२४ ई. में अमरावती के किंग एडवर्ड कालेज में संस्कृताध्यापक श्री हीरालाल जैन से उन पुरा लेखों का देवनागरी लिपि में संस्करण तैयार करने का अनुरोध किया ताकि हिन्दीविद् विद्वान भी उनका उपयोग कर सकें। श्री हीरालाल जी द्वारा सम्पादित देवनागरी लिपि में निबद्ध श्रवणबेलगोल और उसके समीपवर्ती क्षेत्रों के ५०० पुरालेखों का संकलन सन् १९२८ ई. में प्रेमी जी ने **"जैन-शिलालेख संग्रह : (प्रथमो भागः)"** नाम से श्री माणिकचंद्र दि. जैन ग्रन्थमाला समिति से प्रकाशित कराया। यद्यपि इस संग्रह ने उक्त क्षेत्र के धार्मिक- सांस्कृतिक व राजनैतिक इतिहास में रुचि रखने वाले और उसमें शोध करने वाले विद्वानों को काफी कुछ लाभान्वित किया, यह पूर्ण प्रतीत नहीं हुआ। उसमें लेखों का हिन्दी भावार्थ न होने से कन्नड भाषा में निबद्ध कई लेखों को समझने में कठिनाई आई। यह भी संज्ञान में आया कि संग्रह में प्रकाशित अभिलेख **'एपिग्राफिआ कर्णाटिका'** की दूसरी जिल्द की प्रकाशन विधि से भिन्नता लिये हुए हैं और कहीं-कहीं परिवर्तन और परिवर्द्धन भी हुआ है। पूर्व संग्रहों में रह गई कमियों के परिहार की दृष्टि से जैन विद्या संस्थान श्री महावीरजी के प्रभारी डॉ. कस्तूरचन्द्र जैन 'सुमन' ने इन अभिलेखों के पुनः सम्पादन का संकल्प लिया।

समीक्ष्य कृति **'भारतीय दिगम्बर जैन अभिलेख और तीर्थ परिचय'** पुस्तक का द्वितीय भाग है जिसमें श्रवणबेलगोल और चन्द्रगिरि के २७१ अभिलेख समाहित हैं। विद्वान लेखक ने अथक परिश्रम कर पंक्तिबद्ध मूलपाठ के अनन्तर प्रत्येक अभिलेख का हिन्दी भावार्थ और अभिलेख परिचय पाठकों की सुविधार्थ सुलभ कराया है। जैन विद्या में शोध कर्ताओं के लिये उपयोगी इस संस्करण की प्रस्तुति हेतु इसके सम्पादक और प्रकाशक दोनों साधुवाद के पात्र हैं।

**(२) विश्वलोचनकोशः (मुक्तावली कोशः)** : श्रीधरसेनाचार्य विरचित; संपादक दर्शनाचार्य गुलाबचन्द्र जैन; प्र. मदनमहल जनरल स्टोर्स, पुस्तक प्रकाशक, १२४६, गोल बाजार, जबलपुर-४८२००२; द्वि.सं. १९९७; पृ. ४२२+३२; मूल्य रु. १००/-

किसी भाषा में प्रवीणता पाने के लिये उस भाषा के शब्द-भण्डार का ज्ञान आवश्यक है। उपयुक्त शब्द चयन द्वारा ही भावों की सही अभिव्यक्ति संभव है। प्रायः एक ही शब्द के एकाधिक अर्थ होते हैं। शब्द के भिन्न-भिन्न अर्थों के ज्ञाता रचनाकार प्रायः किसी शब्द विशेष को श्लेष अथवा यमक अलंकार के रूप में प्रयुक्त कर अपनी

रचना में रमणीयता लाने में सफल हो जाते हैं। किसी भाषा का शब्द-भण्डार कितना विशाल है, कहना कठिन है। भाषा के सम्पूर्ण भण्डार का ज्ञान किसी को है, यह कहना भी दुष्कर है। तदपि अपने-अपने ज्ञान के अनुसार भाषा के शब्दों और उनके अर्थों के संरक्षण हेतु समय-समय पर मनीषी शब्द कोशों का निर्माण करते आ रहे हैं। भारत की प्राचीन भाषा देववाणी संस्कृत, जो आधुनिक भारतीय भाषाओं की जननी मानी जाती है, की सुविख्यात विपुल साहित्यिक सम्पदा का श्रेय उसके शब्द कोशों को है। संस्कृत भाषा के शब्द कोशों में सर्वाधिक प्रसिद्ध नाम है अमर सिंह कृत **'अमरकोश'** का। इसका रचनाकाल चौथी से छठी शती ईस्वी के मध्य अनुमानित है। सन् १९१४ ई. में मुम्बई के सेठ खेमराज श्रीकृष्णदास द्वारा अपने श्री वेंकटेश्वर यन्त्रालय में मुद्रित करा प्रकाशित किये गये **'अमरकोशः'** की एक जीर्ण प्रति हमारे पुस्तक संग्रह में अभी सुरक्षित है। इस कोश को मुरादाबाद वासी गौड वंश में उत्पन्न भोलानाथ के आत्मज पण्डित रामस्वरूप ने भाषा टीका और शब्दानुक्रमणिका से युक्त किया है। इस कोश के अन्त में दी हुई विज्ञप्ति से जिन अन्य कोश-ग्रन्थों की जानकारी प्राप्त होती है, वे हैं- **अनेकार्थध्वनिमंजरी;** जोधपुर निवासी रामसनेही साधु भावनदास महाराज द्वारा छंदबद्ध भाषाकोश **'भावीनाममाला'** जिसमें हेम-विश्व-व्याडि-धरणि-मेदिनी आदि अनेक कोशों का सार लेकर संस्कृत तथा भाषा में प्रचलित प्रायः सभी शब्द लिये हैं; तथा ४ जिल्द और ३१९३ पृष्ठों में **शब्दार्थ चिन्तामणि। अनेकार्थध्वनिमंजरी** और **शब्दार्थचिन्तामणि** के रचनाकारों के नाम और समय उल्लिखित नहीं हैं।

संस्कृत के उपर्युक्त कोश-ग्रन्थों तथा समीक्ष्य कृति के अतिरिक्त जो नाम उल्लेखनीय हैं उनमें कवि धनंजय (८वीं शती ईस्वी) कृत **अनेकार्थनाममाला; हेमचन्द्राचाय** (१०८८-११७२ ई.) विरचित **अभिधान चिन्तामणि** और **अनेकार्थ संग्रह,** महेश्वर द्वारा ११०५ अथवा ११११ ई. में रचित **विश्व प्रकाश** तथा **मेदिनी कर** कृत **अनेकार्थशब्दकोश** की गणना है। प्रो. रामावतार शर्मा ने **कल्पद्रुम-कोश** की भूमिका में मेदिनी का समय १२वीं शती अनुमानित किया है।

समीक्ष्य कृति **विश्वलोचनकोश** अपरनाम **मुक्तावली कोश** के कर्ता दिगम्बर जैन श्रमण संघ के सेन अन्वय में हुए न्याय शास्त्र के पण्डित कवि मुनिसेन के शिष्य कविपण्डित श्रीधरसेन हैं। अन्तः और बाह्य साक्ष्यों के परीक्षण के आधार पर विद्वानों ने उनका समय १३५० से १५५० ई. के मध्य अनुमानित किया है। इस कोश में संस्कृत के अनुष्टुप वृत्त में रचित २४५३ पद्य हैं। इस नानार्थक कोश की विशेषता यह है कि इसमें पूर्ववर्ती कोशों की अपेक्षा शब्दों के अधिक अर्थ दिये गये हैं। यथा-

'रुचक' शब्द के लिये जहाँ **'अमरकोश'** में चार और **'मेदिनी'** में दश अर्थ दिये गये हैं, **'विश्लोचन'** में १२ अर्थ बताये हैं। श्रीधरसेन ने अपने कोश में पूर्ववर्ती कोशकारों हेमचन्द्र, महेश्वर और मेदिनी के कोशों में वर्णित शब्द क्रम को काफी कुछ अपनाया है। इस कोश का प्रचुर उपयोग **वीरोदय, जयोदय, सुदर्शनोदय** महाकाव्यों तथा **दयोदय** चम्पू काव्य के प्रणेता पं. भूरामल शास्त्री (आचार्य ज्ञानसागर महाराज), उनके शिष्य आचार्य विद्यासागर तथा डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य प्रभृति साहित्यकारों द्वारा अपनी कृतियों में किया गया है। साधिक पाँच सौ वर्ष पुराने इस कोश को शिक्षाप्रेमी विद्वज्जनों, विद्यार्थियों और संस्कृत-प्रेमी नागरिकों के उपयोगार्थ, आ. विद्यासागर जी की प्रेरणा से, सम्पादित करने तथा उसे सारगर्भित परिचयात्मक भूमिका से सज्जित करने का सुकार्य दर्शनाचार्य गुलाबचन्द्र जैन ने किया है, जिसके लिये वह साधुवाद के पात्र हैं।

**(३) आचार्य रविषेण कृत पद्मपुराण** : अनुवाद-सम्पादन डॉ. प्रभा जैन, सहयोगी प्रो. लक्ष्मीचन्द्र जैन; प्र. श्री ब्राह्मी सुन्दरी प्रस्थाश्रम समिति, २१, कंचन विहार, विजयनगर, जबलपुर (म.प्र.)-४८२ ००२; प्र.सं. २००६; पृ. ४७६+८+१६; मूल्य रु. ४००/-

विभिन्न भारतीय भाषाओं में निबद्ध जैन परम्परा का राम कथा साहित्य काफी विपुल है। जहां महावीर निर्वाण संवत् ५३० (सन् ३ ई.) में विमल सूरि द्वारा रचित **'पउमचरिउ'** प्राकृत भाषा में उपलब्ध इस विषय की सर्व प्राचीन कृति है, वहीं, महावीर निर्वाण के १२०३ वर्ष ६ मास पश्चात (सन् ६७६ ई.) में मुनि लक्ष्मणसेन के शिष्य आचार्य रविषेण द्वारा १२३ पर्व में १८,०२३ अनुष्टुप श्लोक में रचा गया **'पद्मपुराण'** रामायण की कथा वर्णन करने वाला संस्कृत भाषा में उपलब्ध सर्वप्राचीन जैन पुराण माना जाता है। स्वयंभू (ल. ७७५-८०० ई.) द्वारा अपभ्रंश भाषा में विरचित **'पउमचरिउ'** अपरनाम **'स्वयम्भू रामायण'** भी विद्वानों में काफी लोकप्रिय रही है। यह उल्लेखनीय है कि जैन परम्परा में मर्यादापुरुषोत्तम श्री राम का नाम 'पद्म' प्रचलित है और बलभद्र के रूप में उनकी मान्यता है। **'वाल्मीकि रामायण'**, और तुलसीदास कृत **'रामचरितमानस'** प्रभृति ब्राह्मणीय परम्परा के राम कथानकों से अनेक स्थलों पर विभेद होते हुए भी कथानक के मुख्य पात्र प्राय वे ही हैं और जैन परम्परा में भी श्रद्धा के पात्र हैं। यह भी उल्लेखनीय है कि जैन परम्परा में राम कथा के दो रूप मिलते हैं जो परस्पर एक दूसरे से कहीं-कहीं भिन्नता लिये हुए हैं।

महाकाय **'पद्मपुराण'** के पं. पन्नालाल जैन साहित्याचार्य द्वारा सम्पादित और हिन्दी भाषा में किये गये अनुवाद का संस्करण तीन भागों में भारतीय ज्ञानपीठ से सन्

१९५९ ई. में प्रकाशित हुआ था। समीक्ष्य कृति में 'पुरोवाक्' से विदित होता है कि इस विशाल पुराण ग्रन्थ का सार संक्षेप हिन्दी में किन्हीं परमानन्द मास्टर द्वारा किया गया था और उसे आधार रूप ग्रहण कर कथा के व्यापक प्रसार हेतु उसे अंग्रेजी अनुवाद सहित विदुषी डॉ. प्रभा जैन ने प्रस्तुत किया है। समीक्ष्य कृति में मूल पुराण में १२३ पर्वों में गुम्फित रामकथा को मात्र इकतीस परिच्छेदों में समाहित किया गया है। हिन्दी और इंगलिश उभय भाषाओं में एक साथ प्रस्तुत यह रामकथा हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं के पाठकों को रोचक लगेगी, इसमें सन्देह नहीं है। यद्यपि ग्रन्थ में यत्र-तत्र मुद्रण-दोष तथा अंग्रेजी अनुवाद में कहीं-कहीं उपयुक्त शब्दों का अभाव खटकता है, कुल मिलाकर इस रोचक पुरणकथा को विस्तृत पाठक जगत के सम्मुख लाने तथा ग्रन्थ में जहाँ-जहाँ पृष्ठों पर रिक्त स्थान रहा उसे संस्कृत के सुभाषित और अंग्रेजी सूक्तियों से सजाने हेतु सम्पादक- अनुवादिका बधाई की पात्र हैं।

○ (४) **जैन धर्म** : ले. श्री रतनलाल जैन; प्र. नगीन प्रकाशन प्रा. लि., मेरठ; प्राप्ति स्थान : श्री प्रदीप कुमार जैन, रतन विला, निकट जैन मन्दिर, बिजनौर-२४६७०१: द्वि.सं. २००६; पृ. १४३; सहयोग राशि रु. ५१/-

२४ मई, १९७६ ई. को बिजनौर में लगभग ८४ वर्ष की वय में दिवंगत हुए सुप्रसिद्ध स्वतन्त्रता सेनानी, समाज सुधारक एवं जैन धर्म और दर्शन के अध्येता तथा **'आत्म-रहस्य'** पुस्तक के प्रणेता श्री रतनलाल जैन की सन् १९७४ ई. में प्रकाशित पुस्तक **'जैन धर्म'** का यह द्वितीय संस्करण है। समीक्ष्य कृति में जैन धर्म के मुख्य सिद्धान्तों का विवेचन सरल सहज भाषा में वैज्ञानिक शैली के आधार पर किया गया है। पुस्तक १५ अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय में जगत की रचना के सम्बन्ध में विचार किया गया है। द्वितीय अध्याय में जीव और पुद्गल अर्थात् चेतन और जड़ पदार्थों की व्याख्या है। तृतीय अध्याय में प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के जीवन पर प्रकाश डाला गया है। चौथे अध्याय में षट् द्रव्यों का स्वरूप, पांचवे में कर्म सिद्धान्त का वैज्ञानिक विवेचन तथा छठे में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र रूप रत्नत्रय का वर्णन है। चरित्र पर केन्द्रित सातवें अध्याय में गृहस्थ और मुनि दोनों के ही गुणों, व्रतों, चर्या आदि की व्याख्या है। आठवें अध्याय में आत्मोन्नति के सोपान १४ गुणस्थानों का वर्णन है। नवें अध्याय में जैन धर्म की प्राचीनता का वर्णन है। दसवें अध्याय में अहिंसा, अपरिग्रह, अनेकान्त-स्याद्वाद्, वर्ण व्यवस्था, मूर्ति पूजा और जैन समाज में स्त्री के स्थान का विवेचन है। ११वें अध्याय में अन्य धर्मों से जैन धर्म की समानता का विवेचन है। १२वें अध्याय में विभिन्नकालों में जैन धर्म की स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। अन्तिम तीन अध्याय दिगम्बर-श्वेताम्बर भेद, भट्टारकप्रथा,

जैन कला और भारतीय संस्कृति में जैन धर्म के योगदान को समर्पित हैं। समग्रतः जैन धर्मानुयायियों को ही नहीं सामान्य पाठकों को भी जैन धर्म और संस्कृति का परिचय देने हेतु यह पुस्तक उपयोगी है। वर्षों से अनुपलब्ध रही इस पुस्तक का पुनः मुद्रण-प्रकाशन कराने तथा इसके आवरण पृष्ठों को सुरुचिपूर्ण कलात्मक प्रतीकों से मण्डित कराने हेतु बन्धुवर प्रदीप कुमार बधाई के पात्र हैं। साथ ही श्रद्धेय रतनलाल जी को इस वर्ष उनकी ३२वीं पुण्यतिथि पर हमारा सादर नमन् है।

(५) **खोज गांधी की** : ले. श्री चन्द्रशेखर धर्माधिकारी; अनुवादक श्री जमनालाल जैन; प्र. गांधी विचार परिषद, गोपुरी, वर्धा-४४२००१; प्र.सं. २००८; पृ. २४६; मूल्य रु. २२५/-

समीक्ष्य पुस्तक महात्मा गांधी के अनन्य सहयोगी दादा धर्माधिकारी के सुपुत्र न्यायमूर्ति श्री चन्द्रशेखर धर्माधिकारी द्वारा विविध प्रसंगों पर गांधी जी के विषय में लिखे गये २२ लेखों का पुस्तक रूप संकलन है। गांधी जी के व्यक्तिगत सम्पर्क में आये और रहे संवेदनशील सुचिन्तक चन्द्रशेखर जी ने गांधी जी, उनके जीवन के विविध प्रसंगों और उनकी विचारधारा आदि को जैसा जाना-समझा उसका प्रस्फुटन इन लेखों में हुआ है। गांधी जी और विविध विषयों पर उनके विचारों को जानने समझने के लिये आज उनकी हत्या के साठ साल बाद भी यह कृति पाठकों को पाथेय प्रदान करने वाली है। मूलतः मराठी में प्रणीत पुस्तक को हिन्दी पाठकों को सुलभ कराने का श्रेय सारनाथ वाराणसी के वयोवृद्ध गांधीवादी चिन्तक श्री जमनालाल जैन को है। अनुवादक के धर्म का उन्होंने बखूबी निर्वहन किया है। इस पुस्तक से मोहनदास करमचंद गांधी जी के जीवन के कई कम ज्ञात पृष्ठों पर प्रकाश पड़ता है। इससे विदित होता है कि जहाँ उन्हें 'महात्मा' बनाने वाले कवि रवीन्द्र नाथ टैगोर थे, उन्हें सर्वप्रथम 'राष्ट्रपिता' के नाम से सम्बोधित करने वाले नेताजी सुभाष चन्द्र बोस रहे। पुस्तक प्रणयन हेतु श्री चन्द्रशेखर धर्माधिकारी साधुवाद के पात्र हैं।

(६) **रचनात्मक कार्यक्रम द्वारा अंत्योदय एवं मेरा जीवन विकास** : ले. श्री अनन्त वासुदेव सहस्रबुद्धे; अनु. (स्व.) ति. न. आत्रेय; प्र. गांधी सेवा संघ, सेवाग्राम-४४२१०२ वर्धा (महाराष्ट्र); सं. २००८; पृ. २४८+१६ पृ. चित्र; मूल्य रु. १००/-

सारनाथ वाराणसी के श्री जमनालाल जैन के सौजन्य से प्राप्त समीक्ष्य पुस्तक भारत की स्वतन्त्रता के एक उद्भट सेनानी, महात्मा गांधी के रचनात्मक कार्यक्रम के उत्साही पुरस्कर्ता, अन्त्योदय के लिये समर्पित कार्यकर्ता, भूदान-ग्रामदान आदि आन्दोलनों में प्रत्यक्ष भाग लेने वाले, सर्वसेवा संघ के एक ऐसे निस्पृह सेवक

अण्णासाहब सहस्रबुद्धे की प्रेरक आत्मकथा है जो सेवा की तीव्र लगन से सेवा-क्षेत्र में उतरे और बिना किसी पद या सम्मान की लालसा के जीवन के अन्तिम क्षण तक अपने कर्तव्य पथ पर डटे रहे। ७ अक्तूबर, १८९७ ई. को पुणे के शनिवार पेठ में जन्मे और ११ मार्च, १९८० ई. को लगभग ८३ वर्ष की वय में दिवंगत हुए अनन्त वासुदेव सहस्रबुद्धे एक प्राथमिक शाला में शिक्षक के पुत्र थे। वे सात भाई और एक बहन थे। लड़कों में सबसे बड़े वही थे। बचपन बड़ी विपन्नता में बीता। गरीबी का दर्द क्या होता है, यह उन्होंने भोगा था। समाज और गरीबों की दुर्दशा ने उनका मन झकझोरा था। इसी ने उन्हें समाज सेवा कार्य में उतरने को प्रेरित किया। परिस्थितियों के अनुसार वह अपने जीवन का गठन स्वयं करते चले गये। अपना विवाह करने और अपने परिवार का अवलम्बन बनने का अवकाश भी उन्हें नहीं मिला। जीवन में अनेक चिंतकों, समाज सुधारकों और राजनेताओं से उनका सम्पर्क हुआ। जहां जितना अच्छा लगा जुड़े, नहीं तो अलग हो गये। समाज की, देश की विभिन्न समस्याओं पर अण्णा साहब ने गहनता से चिन्तन किया और समाधान हेतु सक्रिय भूमिका भी निभायी। कई सत्याग्रह आन्दोलनों में भाग लेने के कारण ही नहीं अपितु 'कैपिटल बम केस' और 'महाराष्ट्र कान्सिपरेसी' जैसे मामलों में क्रान्तिकारी की सक्रिय भूमिका अदा करने के कारण कई बार कारागार यात्रा भी करनी पड़ी। अपनी बहुमखी प्रतिभा के बल पर वह प्लानिंग कमीशन की रूरल इंडस्ट्रीज कमेटी के अध्यक्ष भी बने और भारत सरकार द्वारा उन्हें 'पद्म भूषण' सम्मान से अलंकृत भी किया गया।

अपने व्यक्तित्व और कृतित्व से असंख्य जन के श्रद्धा भाजन बने अण्णासाहब के जीवन विकास की यह गाथा मूलतः मराठी में प्रणीत है। सरल सहज ढंग से वर्णित यह आत्मकथा बड़ी ही रोचक है। इसमें किसी प्रकार की लुकाछिपी नहीं है, वकालती युक्तिवाद नहीं है, किसी भी व्यक्ति पर कोई आक्षेप नहीं, तिरस्कार नहीं, मत्सर नहीं, सफलता का गर्व नहीं, विफलता का खेद नहीं। यह उनके जीवन की खुली किताब है। प्राचार्य नरहर कुरुंदकर की विशद सारगर्भित प्रस्तावना और अण्णासाहब के १५ अन्यतम मित्रों-प्रशंसकों के संस्मरणों से इसे मण्डित किया गया है। उनके जीवन के घटनाक्रम की सारणी और चित्रमय झांकी ने इसके कलेवर को अभिनवता प्रदान की है। बीसवीं शती ईस्वी की भारत की इस विलक्षण विभूति से हिन्दी जगत को परिचित कराने हेतु पुस्तक के अनुवादक और प्रकाशक साधुवाद के पात्र हैं।

निम्नलिखित साहित्य की प्राप्ति भी साभार स्वीकार की जाती है-

(१) **जैनागम नवनीत प्रश्नोत्तरी भाग**-१: प्रणेता आगम मनीषी श्री त्रिलोकमुनि जी; प्र. जैनागम नवनीत प्रकाशन समिति, २११, चन्द्रप्रभु अपार्टमेन्ट, ६/१०, वैशाली

नगर, राजकोट-३६० ००७; सं. २००७; पृ. २८७। ३२ श्वेताम्बर आगमों के प्रश्नोत्तर का संकलन १० भागों में किया जाना प्रस्तावित है और इन १० भागों के पूरे सैट का मूल्य रु. ६००/- रखा गया है। प्रस्तुत भाग-१ में **आचारांग सूत्र** और **सूत्रकृतांग सूत्र** सम्बन्धी प्रश्नोत्तर हैं।

(२) **भव रोग एवम् उनका निराकरण** : प्रस्तुति श्री लखपतेन्द्र देव जैन, इंजीनियर, सी-५७ ख, मन्दिर पार्क, महानगर विस्तार, लखनऊ-२२६००६, प्र.सं. २००८; पृ. ६२; मूल्य आत्मोन्नति। णमोकार मन्त्र का माहात्म्य, दशलक्षण धर्म, रत्नत्रय और योगानुशीलन इन चार अध्यायों में विभक्त तथा भव रोगों के उपचार हेतु अन्य जानकारियों से सज्जित यह कृति धर्मनिष्ठ श्रावकों के लिये उपयोगी है।

(३) **श्रुताराधना (प्रवचन संकलन)** : प्रस्तुति एवं संपादन- पं. मूलचन्द लुहाड़िया, किशनगढ़ एवं डॉ. चेतन प्रकाश पाटनी, जोधपुर; प्र. श्री कुण्डलपुर दि. जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी, कुण्डलपुर, जिला दमोह (म.प्र.)-४७०७७३; प्र.सं. २००८; पृ. १५२; मूल्य रु. ४०/-। आचार्य ज्ञानसागर महाराज के समाधि दिवस के उपलक्ष में महावीर आश्रम, कुण्डलपुर (दमोह) में १४ मई से १६ मई, २००७ ई. तक आयोजित त्रिदिवसीय विद्वत्संगोष्ठी में आचार्य विद्यासागर महाराज द्वारा दिये गये प्रवचनों को प्रस्तुत पुस्तक में संकलित किया गया है।

(४) **पारदर्शी सतसई** : कृतिकार श्री ऊँ प्रकाश डाँगी 'पारदर्शी'; प्र. कुलदीप प्रकाशन, २६१/४, उत्तरी आयड़, उदयपुर-३१३००१; प्र.सं. २००७; पृ. १२८; मूल्य रु. १००/-। साहित्य की विविध विधाओं में रचना करने में सिद्धहस्त कवि पारदर्शी के ८०७ दोहों का संकलन प्रस्तुत कृति में है जिनमें सामयिक विसंगतियों पर सशक्त चोट की गई है।

(५) **क्रांति पुंज शहीद भगत सिंह (प्रबन्ध काव्य)** : प्रणेता श्री जयराम दास रस्तोगी; प्र. मधुलिका प्रकाशन, १८६/५१, खत्री टोला, मशकगंज, लखनऊ-२२६०१८; प्र.सं. २००८; पृ. ६२; मूल्य रु. ७५/-। उ.प्र. कृषि मण्डी समिति में लेखाकार पदपर सेवारत ५७ वर्षीय श्री रस्तोगी कुण्डलिया, दोहा, नाटक आदि साहित्य की विविध विधाओं में रचना करने में पटु हैं। उन्होंने प्रस्तुत प्रबन्ध काव्य में नौ सर्गों में अमर शहीद भगत सिंह के तेजस्वी चारित्र का वर्णन सरल-सुबोध भाषा में किया है। इतिहास के विद्यार्थी न होते हुए भी भगत सिंह सम्बन्धी विविध सामग्री का अध्ययन-मनन कर उन्होंने अपने वर्णन को यथाशक्य प्रामाणिक बनाने का प्रयास किया है।

**(६) सराक सोपान (जन्म स्वर्ण जयन्ती विशेषांक)** : मई, २००८, वर्ष ६, अंक ६८; मानद सम्पादक श्री हंस कुमार जैन; प्र. सोसायटी फॉर सराक वेलफेयर एण्ड डवलपमेन्ट, दिल्ली रोड, मेरठ-२५०००२। १ मई, १९५७ ई. को मुरैना में श्री शांतीलाल जैन एवं श्रीमती अशर्फीदेवी जैन के पुत्र रूप में जन्मे श्री उमेश जैन, जिन्होंने सन् १९७४ ई. में वीर ग्राम अजमेर में ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण किया, ५ नवम्बर, १९७६ ई. को सोनागिर में श्री गुणसागर नाम से क्षुल्लक दीक्षा ली तथा ३१ मार्च, १९८८ ई. को सोनागिर में मुनि दीक्षा लेकर जो उपाध्याय ज्ञानसागर बने, की जन्म स्वर्ण जयन्ती पर उनके व्यक्तित्व और कृतित्व को समर्पित यह स्मारिका है।

**(७) श्रमण (जैन विद्या की त्रैमासिक शोध पत्रिका)** : वाल्यूम ५९, अंक १, जनवरी-मार्च, २००८; सम्पादक डॉ. विजय कुमार (हिन्दी खण्ड) एवं डॉ. एस. पी. पाण्डेय (इंगलिश सेक्शन); प्र. पार्श्वनाथ विद्यापीठ, आई.टी.आई.रोड, करौंडी, वाराणसी-२२१ ००५; पृ. १३२; मूल्य प्रति अंक रु. ५०/-। पत्रिका के हिन्दी खण्ड में ८९ पृष्ठों में विद्वान मनीषियों के ११ आलेख समाहित हैं जिनमें 'विज्ञान के क्षेत्र में अहिंसा की प्रासंगिकता' विषय पर ७ पुरस्कृत निबन्ध भी हैं। अंग्रेजी खण्ड में विद्यापीठ प्रांगण और जैन जगत के समाचारों तथा साहित्य सत्कार के अतिरिक्त जैन धर्म में शील और जैन तत्वमीमांसा में जीव की अवधारणा विषयक दो आलेख हैं।

**(8) Exact Sciences in the Karma Antiquity (Volume-IV):** by Prof. Laxmi Chandra Jain with the collaboration of Dr. Prabha Jain; Pub. Shri Brahmi Sundari Prasthashram, 21, Kanchan Vihar, Vijay Nagar, Jabalpur-482002: ed. 2006; pp. 45+147; price Rs. 1,000/-, The treatise with appendices on the Karnanuyoga Texts and Miscellany deals with the Jain theory of Karma in the context of Mathematics and Science from ancient times to modern age.

**(९) जैन विद्या** : सम्पादक डॉ. अमर सिंह एवं डॉ. योगेन्द्र सिंह; प्र. उत्तर प्रदेश जैन विद्या शोध संस्थान, विपिन खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ; २००६; पृ. १६०; मूल्य रु. २००/-। उ.प्र. जैन शोध संस्थान, लखनऊ, द्वारा २८ फरवरी, २००५ को 'जैन बौद्ध योग-दर्शन तथा योग चिकित्सा' पर आयोजित एक-दिवसीय संगोष्ठी में पढ़े गये शोध-निबन्धों में से १८ निबन्धों-१३ हिन्दी में व ५ अंग्रेजी में-को इस विशेषांक में समाहित किया गया है। जैन दर्शन और योग से सम्बन्धित मात्र ५ आलेख हैं और विशेषांक से कोई जैन विद्वान सम्बद्ध नहीं है। **- रमा कान्त जैन**

# समाचार विविधा

## (१) तवाव नगर में भव्य प्रतिष्ठा

राजस्थान में जालोर जिले में प्राकृतिक सौन्दर्य युक्त पहाड़ियों की गोद में तवाव नगर नामक ग्राम बसा हुआ है। इसके एक ओर भीनमाल और दूसरी ओर मोदरानगर स्थित हैं। तवाव नगर में प्राचीन हाथियों की पोल में सर्वांगीण सुन्दर प्रकट प्रभावी श्री भयभंजन पार्श्वनाथ की प्राचीन प्रतिमा है, तथा गुजरात के सोलंकी नरेश कुमारपाल (११४३-११७३ ई.) द्वारा प्रतिष्ठापित भगवान महावीर की प्रतिमा एवं अन्य प्राचीन प्रतिमाएं हैं। सन् १९३४ ई. में आचार्य तीर्थेन्द्रसूरीश्वर द्वारा प्रतिष्ठित मूलनायक श्री चिंतामणि पार्श्वनाथ की अंजनशलाका विधि त्रिस्तुतिक आचार्य राजेन्द्रसूरीश्वर के कर कमलों द्वारा हुई थी। कहा जाता है कि उस मंदिर का निर्माण स्वयं गाँव वालों ने कार सेवा करके अपने हाथों से किया था।

तवाव नगर में श्वेताम्बर जैन समाज के ९६ तथा जैनेतर समाज के एक हजार घर हैं। सभी परिवारों में परस्पर प्रेम-सौहार्दता और पारस्परिक सहयोग की भावना है। यहाँ के लगभग सभी निवासी छोटे-बड़े व्यवसायी हैं जो देश के विभिन्न नगरों में रहकर अपना व्यवसाय सम्हालते हैं। परदेस में रहते हुए भी वे अपने गाँव के प्रति उदासीन नहीं हैं। गाँव के किसी भी मांगलिक या सृजनात्मक कार्य पर मात्र एक बुलावे पर उपस्थित होकर दिलोजान से कार्य में लग जाते हैं और कार्य पूर्ण करते हैं। इस बात का साक्षी है तवाव नगर में दिनांक १८ अप्रैल, २००८ ई. से दिनांक २६ अप्रैल, २००८ ई. तक सम्पन्न नौ दिवसीय भव्य प्रतिष्ठा कार्यक्रम जिसमें देश के विभिन्न भागों से भारी संख्या में श्रद्धालुओं ने भाग लिया। विविध रंगारंग धार्मिक भक्तिमय और सांस्कृतिक कार्यक्रमों से परिपूर्ण इस नौ दिवसीय अनुष्ठान में प्रथम दिन भगवान महावीर के जन्मोत्सव को; दूसरा दिन नंदावर्त-दश दिक्पाल, भैरव पूजन, १६ विद्यादेवी पूजन, नवग्रह, अष्टमंगल पाटला पूजन को, तीसरे दिन से सातवें दिन तक का कार्यक्रम तवाव नगर में निर्मित विनीता (अयोध्या) नगरी में भगवान आदिनाथ के च्यवन (गर्भ) कल्याणक से लेकर उनके दीक्षा कल्याणक तक के समारोहों को समर्पित रहा। आठवां और नौवां दिन श्री चिन्तामणि पार्श्वप्रभु आदि जिन बिम्बों की मंगलकारी प्रतिष्ठा तथा चिन्तामणि पार्श्वनाथ नूतन जिनालय के उद्घाटन एवं सत्तर भेदी पूजन से परिपूर्ण रहा। यह समस्त कार्यक्रम श्वेताम्बर आचार्य श्री रत्नाकर सूरि और उनके

मुनिमंडल के सानिध्य और मार्गदर्शन में सम्पन्न हुआ। तवाव नगर के चिंतामणि चौक में निर्मित शिखरबद्ध यह नूतन जिनालय सफेद दूध की तरह चमकते मकराने के पत्थरों से जड़ित है और इसमें की गई नक्काशी देलवाड़ा (आबू) और राणकपुर के मन्दिरों का स्मरण कराती है।

इस प्रतिष्ठा महोत्सव में देश के कोने-कोने से भाग लेने आने वाले अभ्यागतों के स्वागत -सत्कार, ठहरने एवं भोजन आदि की तो आधुनिक सुविधाओं से युक्त भव्य व्यवस्था थी ही, तवाव नगर की समस्त बहन-बेटियों को शाही ढंग से विदाई भी दी गई। नगर की १८ वर्ष से ६० वर्ष की १२३ बेटियों और ११४ दामादों को भेंट में लिफाफा नगद राशि का दिया गया। अपने भव्य कार्यक्रमों और व्यवस्था आदि से इस प्रतिष्ठा महोत्सव ने कीर्तिमान बनाया।

## (२) जैन म्यूजियम का लोकार्पण

२६ अप्रैल, २००८ ई. को नागार्जुन नगर (आन्ध्र प्रदेश) में आचार्य नागार्जुन विश्वविद्यालय के प्रांगण में श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ गिरिराज ट्रस्ट, विजयवाड़ा, द्वारा निर्मित **श्री आत्मवल्लभ जैन म्यूजियम** का लोकार्पण प्रो. चेन्नारेड्डी ने किया। नागार्जुन विश्वविद्यालय आन्ध्र प्रदेश का पहला विश्वविद्यालय है जहाँ जैन म्यूजियम स्थापित किया गया। इस संग्रहालय में प्रदेश के विभिन्न जिलों से प्राप्त हो रहे जैन अवशेष संरक्षित किये जायेंगे।

## (३) छत्तीसगढ़ में जैन पुरातत्व पर राष्ट्रीय संगोष्ठी

भारतीय विद्या भवन, श्रुत संवर्धन संस्थान एवं अखिल भारतीय दिगम्बर जैन परिषद के संयुक्त तत्वावधान में ३ व ४ मई, २००८ ई. को रायपुर में जैन पुरातत्व पर आयोजित दो दिवसीय संगोष्ठी में प्रदेश के मुख्यमंत्री डॉ. रमन सिंह ने कहा कि छत्तीसगढ़ में प्राचीन जैन मूर्तियां व अन्य अवशेष बहुतायत से मिलना इस बात का संकेत हैं कि राज्य में पुरातन काल से जैन परम्परा अपनी जड़ें जमाये हुये है। उन्होंने इस राष्ट्रीय संगोष्ठी की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुये कहा कि इससे अनेक तथ्य प्रकाश में आयेंगे। इस अवसर पर प्रदेश के संस्कृति मंत्री श्री ब्रजमोहन अग्रवाल ने प्रदेश शासन द्वारा पुरावशेषों के उत्खनन में हर संभव सहायता दिये जाने का आश्वासन दिया और कहा कि प्रदेश का संस्कृति विभाग पुरातत्व पर प्रतिवर्ष एक जरनल भी प्रकाशित करेगा जिसमें जैन पुरातत्व सम्बन्धी जानकारी भी रहेगी।

संगोष्ठी में पहले दिन तीन सत्रों में २० शोध-पत्र पढ़े गये जिनमें भारतवर्ष के विभिन्न नगरों से आये विद्वान पुरातत्वविदों ने अपने-अपने दृष्टिकोण रखे। भारतीय

पुरातत्व सर्वेक्षण दिल्ली के पूर्व निदेशक डॉ. अमरेन्द्र नाथ ने कहा कि मल्हार से मिली जैन प्रतिमाओं का समय निर्धारित किया जा सकता है। पुरातन काल में मल्हार जैन संस्कृति का बहुत बड़ा केन्द्र था। दक्षिण कोसल (वर्तमान में छत्तीसगढ़) का यह नगर दक्षिणापथ रूट पर आता था। इस जगह की उत्खनन सामग्रियां जैन संस्कृति का इस क्षेत्र में फलना फूलना बताते हैं। यहाँ से मिले पंच मार्क के सिक्के गुप्त कालीन ब्राह्मी अभिलेख को पढ़ने में सहायक सिद्ध हुये हैं। दूसरे दिन समापन सत्र की अध्यक्षता अ.भा. दिगम्बर जैन परिषद के अध्यक्ष श्री बलवंतराय जैन ने की। दूसरे दिन १० शोध-पत्र पढ़े गये। प्रमुख वक्ता प्रो. मारुतिनंदन प्रसाद तिवारी, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, थे। प्रो. तिवारी ने जैन ग्रंथों, विशेष रूप से **हरिवंश पुराण, आदि पुराण** एवं **पद्मपुराण** आदि, के उदाहरण देकर बताया कि जैन पुरातत्व को जानने के लिये जैन स्थापत्य कला को जानना आवश्यक है। उन्होंने बताया कि खजुराहो के जैन मंदिर में भी हिन्दू मंदिर की भांति दीवारों पर मिथुन मूर्तियां पाई जाती हैं क्योंकि **हरिवंश पुराण** में एक स्थान पर कहा गया है कि धर्म के प्रति आकर्षण हेतु इस प्रकार की मूर्तियां बनाना उस काल में आवश्यक था। विद्वान वक्ताओं का मानना था कि छत्तीसगढ़ में सिरपुर, आरंग, मल्हार, रतनपुर, धन्यपुर आदि अनेक ऐसे स्थान हैं जहाँ जैन संस्कृति एवं पुरातत्व सम्बंधी अनेक जानकारियां उत्खनन के बाद ही प्रकाश में आयेंगी। संगोष्ठी में छत्तीसगढ़ शासन एवं भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण संस्थान ने उत्खनन कराकर पुरा सम्पदा को प्रकाश में लाने का आश्वासन दिया।

संगोष्ठी की सफलता का श्रेय रायपुर जैन समाज के श्री सनत जैन प्रभृति उत्साही युवकों को रहा।

## (४) कर्मवीर भाऊराव पाटील

महाराष्ट्र के कोल्हापुर जिले के दूधगाँव में शेतवाल जैन कुल में भाऊराव पाटील का जन्म हुआ था। इन्होंने मैट्रिक तक शिक्षा प्राप्त की थी। कौटुम्बिक जिम्मेदारियों के निर्वहन हेतु उन्होंने किर्लोस्कर द्वारा बनाये जाने वाले उत्पादों की बिक्री की एजेन्सी ली, तदनन्तर कंदील बिक्री की एजेन्सी ली, किन्तु मन इनमें नहीं रमा। इनके मन में निरक्षरों को साक्षर करने की लौ लगी। सन् १९०९ ई. में दूधगांव में इन्होंने पहली पाठशाला खोली। तत्पश्चात नेर्ले, काले आदि स्थानों पर पाठशाला शुरू कीं। कई रात्रि शिक्षण संस्थाएं, प्राथमिक शाला, माध्यमिक शाला, ट्रेनिंग कॉलेज, महाविद्यालय खोले। महाराष्ट्र में शिक्षा-प्रसार के क्षेत्र में पचास वर्ष तक अपना महती योगदान दिया।

महात्मा गांधी के सादा जीवन, उच्च विचार, उनकी अहिंसा, त्याग, जेलयात्रा, विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार इत्यादि कार्यों ने भाऊराव जी को इतना प्रभावित किया कि वह उन्हें देवता तुल्य मान उनके कार्यों में सहयोग करने लगे। विट्ठल राम शिंदे

के हरिजन उद्धार से भी बहुत प्रभावित हुए और अस्पृश्यों के हित के लिये अपना जीवन लगा दिया। महात्मा ज्योतिराव फुले की स्त्री शिक्षा और समाज सुधार के भी वह समर्थक रहे। कन्या पाठशाला खोली। सावित्रीबाई फुले पढकर पाठशाला में अध्यापिका बनी। लोगों के प्रतिवाद की उन्होंने परवाह नहीं की।

भाऊराव जी ने स्व व्यय, अध्यावसाय और हिम्मत से शिक्षण संस्थाओं की स्थापना की। उनका शैक्षणिक कार्य व्यापक था। उनकी संस्थाओं में सब जाति और धर्म वालों का प्रवेश था। अज्ञान रूपी अंधकार से ज्ञानरूपी प्रकाश में लाने का भगीरथ प्रयास उन्होंने किया और अनेक व्यक्तियों का संसार सफल बनाया। उनके कर्तृत्व का स्मरण कर उन्हें 'कर्मवीर' की पदवी से विभूषित किया गया। पुणे विद्यापीठ ने उन्हें डी.लिट्. की उपाधि से गौरवान्वित किया तथा भारत सरकार ने सन् १९५९ ई. में 'पद्मभूषण' की पदवी से अलंकृत किया। ९ मई, १९५९ ई. को वह दिवंगत हो गये। उन कर्मवीर की ४९वीं पुण्यतिथि पर उन्हें शत-शत नमन्।

## (५) बी. एल. इन्स्टीट्यूट ऑफ इण्डोलॉजी, दिल्ली, में व्याख्यान

उपर्युक्त इन्स्टीट्यूट में 'तत्त्वबोध' मासिक व्याख्यानमाला के अन्तर्गत २४ मई, २००८ ई. को डॉ. धर्मचन्द जैन (जोधपुर) ने 'जैनदर्शन में काल का स्वरूप' विषयक शोध-पत्र प्रस्तुत किया। व्याख्यान सत्र की अध्यक्षता एल. डी. संस्कृति विद्या मंदिर, अहमदाबाद, के निदेशक डॉ. जी. बी. शाह ने की।

## (६) श्री स्याद्वाद महाविद्यालय का शताब्दी समारोह

सन् १९०५ ई. की श्रुत पंचमी को भदैनी, वाराणसी, में श्रद्धेय गणेश प्रसाद वर्णी जी द्वारा स्थापित देश की अन्यतम जैन शिक्षण संस्था का द्विदिवसीय शताब्दी समारोह दिनांक २५ व २६ मई, २००८ ई. को प्रो. फूलचन्द जैन 'प्रेमी' के संयोजकत्व में भव्यता से सम्पन्न हुआ।

## (७) श्रुत पंचमी पर्व और शोध पुस्तकालय स्थापना दिवस

ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी, रविवार, ८ जून २००८ ई. को प्रातःकाल तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र., के चारबाग, लखनऊ स्थित शोध पुस्तकालय में श्री लूणकरण नाहर जैन की अध्यक्षता में **षट्खण्डागम** शास्त्र ग्रन्थों और वाग्देवी-श्रुतदेवी-सरस्वती के चित्र को प्रतिष्ठित कर मंगलाचरण स्वरूप जिनवाणी सरस्वती की वंदना कर श्रुत पंचमी पर्व और शोध पुस्तकालय स्थापना दिवस कार्यक्रम का शुभारंभ हुआ। कार्यक्रम का संचालन महामंत्री रमा कान्त जैन ने किया। सर्वप्रथम इस पर्व के ऐतिहासिक महत्व पर प्रकाश डालने हेतु **शोधादर्श**-४४ (जुलाई २००१

ई.) में प्रकाशित श्रद्धेय अजित प्रसाद जैन जी के आलेख **'जयति श्रुत देवता'** का वाचन हुआ और बतलाया गया कि अब से ३२ वर्ष पूर्व सन् १९७६ ई. में इस दिन इस शोध पुस्तकालय की स्थापना हुई थी जिससे सामान्य पाठकों के अतिरिक्त अनेक शोधार्थी लाभ उठा रहे हैं। तदनन्तर सर्वश्री प्रकाशचंद्र जैन 'दास', आदित्य जैन, भगवान भरोसे जैन, डॉ. शशि कान्त, डॉ. राका जैन, श्री दिनेश चन्द्र जैन, डॉ. विजय कुमार जैन और श्री नरेश चन्द्र जैन ने पर्व के सम्बन्ध में अन्य विविध जानकारी प्रस्तुत की और अपने विचार व्यक्त किये। वक्ताओं ने स्वाध्याय की आवश्यकता पर बल दिया। श्री भगवान भरोसे ने श्री न्यामत सिंह का आध्यात्मिक भजन 'अपार मेरे स्वामी भवदधि से कर मुझे पार', डॉ. राका ने स्वरचित रचना 'जीवन क्रम है टेढा-मेढ़ा, जिनवाणी सिहर उठी हैं। विश्वशांति की हर आवाज में, जिनवाणी मुखर उठी है।', श्री दिनेश जैन ने आध्यात्मिक भजन 'नर जीवन दिन चार है, श्रावक कुल सफल बना लो' तथा श्री लूणकरण नाहर जैन ने आध्यात्मिक भजन 'उठ जाग मेरे चैतन्य प्रभु, तू मृत्यु से भय क्यों खाता है ?' सुनाकर वातावरण को रससिक्त किया। अंत में समवेत स्वर में जिनवाणी स्तुति के साथ कार्यक्रम पूर्ण हुआ। प्रभावना वितरण का पुण्यलाभ श्री लूणकरण नाहर जैन ने लिया।

## (८) डॉ. ज्योति प्रसाद जैन स्मृति-गोष्ठी

११ जून, २००८ ई. को ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ में इतिहास-मनीषी विद्यावारिधि डॉ. ज्योति प्रसाद जैन की २०वीं पुण्यतिथि पर उनका पुण्य स्मरण किया गया। सर्वप्रथम श्रद्धेय डॉक्टर साहब और वाग्देवी सरस्वती के चित्रों पर माल्यार्पण एवं दीप-प्रज्वलन किया गया। श्रीमती मंजरी जैन, श्रीमती मोहिनी, श्रीमती सीमा एवं डॉ. अलका अग्रवाल द्वारा श्रद्धेय डॉक्टर साहब द्वारा रचित 'वीतराग स्वरूपम्' और 'जय महावीर नमो' के समवेत गायन तथा हास्य-व्यंग्य कवि श्री अनिल 'बांके' द्वारा वाणी वन्दना के साथ कार्यक्रम का शुभारंभ हुआ।

डॉ. शशि कान्त ने डॉक्टर साहब को अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हुये इतिहास के प्रति उनकी दृष्टि तथा उनके द्वारा दिये गये बौद्धिक संस्कारों पर प्रकाश डाला। श्रीमती सीमा जैन ने डॉक्टर साहब के जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व का परिचय दिया। श्री नरेश चन्द्र जैन ने अपने संस्मरणों में डॉक्टर साहब से पुत्रवत स्नेह और सामाजिक कार्य हेतु प्रेरणा प्राप्त होने की बात रेखांकित की। डॉ. महावीर प्रसाद जैन 'प्रशांत' तथा श्री लूणकरण नाहर जैन ने उन्हें अपनी हार्दिक काव्यांजलि अर्पित

की। सर्वश्री प्रवीण कुमार शुक्ल, राजीव कान्त, अनिल बांके, शिवभजन कमलेश, जगदीश शुक्ल, रवि अवस्थी, रमा कान्त और सभी समागत ने श्रद्धेय डॉक्टर साहब को भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की। श्री लूणकरण नाहर तथा कु. अनुभूति एवं कु. तन्वी ने भ. महावीर सम्बन्धी भजन तथा कवि शिवभजन कमलेश ने छन्द प्रस्तुत किये। इंजीनियर राजीव कान्त और डॉ. शशि कान्त ने अपनी चिन्तनप्रद और राष्ट्र प्रेम सम्बन्धी रचनाएं सुनाईं। कवि गोबर गणेश, कवि बांके और रमा कान्त ने जहां अपनी हास्य-व्यंग्य रचनाओं से श्रोताओं को हंसाया, वहीं छंदकार जगदीश शुक्ल तथा गीतकार शिवभजन कमलेश एवं रवि अवस्थी ने अपनी सरस रचनाओं से वातावरण को रससिक्त किया।

नगर के लब्ध प्रतिष्ठ वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. परमानन्द जड़िया द्वारा अध्यक्षीय सम्बोधन एवं काव्य-पाठ तथा ज्योति प्रसाद जैन ट्रस्ट के सचिव रमा कान्त जैन द्वारा आभार अभिव्यक्ति के साथ कार्यक्रम पूर्ण हुआ।

## (९) अमर शहीद का १५०वां बलिदान दिवस

२२ जून को बीकानेर (राजस्थान) में स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी **अमरचन्द बांठिया** का १५०वां बलिदान दिवस मनाया गया। अपनी ईमानदारी और कर्त्तव्य परायणता के कारण तत्कालीन ग्वालियर राज्य के प्रधान राजकोष गंगाजली के कोषाध्यक्ष के पद पर पहुँचे अमरचन्द जी ने सन् १८५७ ई. के प्रथम स्वातंत्र्य समर में अपनी जान की परवाह न करते हुए झांसी की रानी लक्ष्मीबाई के संकेत पर ग्वालियर का राजकोष उनके सैनिकों के लिये खोल दिया था। अतः ब्रिटिश हुकुमत ने राजद्रोह के आरोप में उन्हें गिरफ्तार कर २२ जून, १८५८ ई. को ग्वालियर के सराफा बाजार में नीम के पेड़ से लटका कर सार्वजनिक रूप से फांसी दी थी।

## (१०) श्री अजित प्रसाद जैन की तृतीय पुण्यतिथि

२५ जून, २००८ ई. को लखनऊ में निर्भीक पत्रकार एवं समाजसेवी स्व. श्री अजित प्रसाद जैन की तृतीय पुण्यतिथि मनायी गयी। वह **'शोधादर्श'** (लखनऊ) और **'समन्वय वाणी'** (जयपुर) के प्रधान सम्पादक तथा तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र., के संस्थापक-महामंत्री रहे थे। **जैन गज़ट** साप्ताहिक (लखनऊ) की प्रकाशन व्यवस्था से भी कुछ समय तक जुड़े रहे थे। अपने जीवनकाल में अनेक स्थानीय, प्रादेशिक और राष्ट्रीय स्तर की धार्मिक, सामाजिक एवं शैक्षणिक संस्थाओं से वह सक्रिय रूप से सम्बद्ध रहे थे। एक धर्मनिष्ठ सुश्रावक के रूप में उनकी ख्याति थी।

२५ जून को प्रातः तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति के शोध पुस्तकालय में उनके चित्र पर माल्यार्पण कर श्रद्धा-सुमन अर्पित किये गये। तदनन्तर अपराह्न में ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ में श्री लूणकरण नाहर जैन की अध्यक्षता में सम्पन्न तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र., की साधारण सभा की बैठक में श्रद्धेय अजित प्रसाद जी के चित्र पर माल्यार्पण कर उनका पुण्य स्मरण किया गया। सर्वप्रथम श्री नलिन कान्त जैन ने उनके जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व पर विशद प्रकाश डाला। तदनन्तर अपने संस्मरणात्मक उद्‌गारों में श्री रोहित कुमार ने कहा कि वह वस्तुतः जैन साहित्य जगत के अद्‌भुत सितारे थे। उन्होंने पत्रकारिता के माध्यम से जैन धर्म के सिद्धान्तों को जन-जन तक पहुंचाने का प्रयास किया था। सर्वश्री राकेश कुमार, धनेन्द्र कुमार और मयंक जैन ने उन्हें स्पष्टवादी और अपनी बात निर्भीकता से, किसी की निन्दा की परवाह किये बिना, रखने वाला बताया और कहा कि वह सुलझे हुए विचारों वाले थे। श्री नरेश चन्द्र जैन ने कहा कि उन्हें श्रद्धेय चाचाजी का भतीजे की भांति स्नेह प्राप्त था और वह उन्हें सामाजिक कार्यों के प्रति प्रेरित करते रहते थे। उनके ज्येष्ठ भ्रातृज डॉ. शशि कान्त ने अपने संस्मरण सुनाते हुए कहा कि एक नैष्ठिक जैन श्रावक होते हुए भी चाचाजी रूढ़िवादी नहीं थे। वह स्वाध्याय के साथ सतत स्वतंत्र चिन्तन को प्रोत्साहित करते थे। श्री रमा कान्त और श्री लूणकरण नाहर जैन ने उनके प्रति भावांजलि प्रस्तुत की तथा श्री नाहर ने आध्यात्मिक भजन 'ओ प्यारे पंछी जिस दिन तू उड़ जायगा, तेरा प्यारा पिंजरा पीछे यहां जलाया जायेगा" सुनाकर वातावरण को रससिक्त किया।

श्रद्धेय अजित प्रसाद जी के आवास पारस सदन, आर्यनगर, लखनऊ, में भी उनके चित्र पर माल्यार्पण तथा सवा घंटे के णमोकार महामंत्र के सामूहिक पाठ के साथ उनका पुण्य स्मरण किया गया।

## (११) जैन स्वर्ण मंदिर

राजस्थान में अरावली पर्वतमाला की गोद में एवं गोड़वाड़ क्षेत्र के प्रवेश द्वार पर फालना नगर में श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ भगवान का जिनालय है जिसकी प्रथम प्रतिष्ठा वि.सं. १९७० (१९१३ ई.) में तथा जीर्णोद्धार प्रतिष्ठा वि.सं. २०३५ (१९७८ ई.) में हुई थी। २५ वर्ष पश्चात् श्री जैन संघ खुडाला के मैनेजिंग ट्रस्टी श्री इन्दरभाई राणावत ने स्वर्ण मंदिर बनाने का सपना देखा और एक वर्ष के अथक प्रयास से उस स्वप्न को साकार कर मंदिर को स्वर्ण मंदिर में रूपान्तरित कर दिया। इस स्वर्ण मंदिर का उद्‌घाटन तत्कालीन उपराष्ट्रपति महामहिम श्री भैंरोसिंह शेखावत के कर कमलों से सम्पन्न हुआ। यह स्वर्ण मंदिर फालना रेलवे स्टेशन से कुछ ही

दूरी पर है। भारत के हर कोने से आने के लिये रेल एवं बस की सुविधा है तथा यत्रियों के ठहरने हेतु सर्वसुविधायुक्त अतिथि भवन है।

## (१२) पश्चिम बंगाल तथा दिल्ली सरकार द्वारा भी जैन समाज को अल्पसंख्यक दर्जा

फरवरी २००८ ई. में पश्चिम बंगाल सरकार द्वारा तथा जून २००८ ई. में दिल्ली सरकार द्वारा जैन समुदाय को अल्पसंख्यक दर्जा प्रदान किया गया है। इसके पूर्व कर्णाटक, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, उत्तरप्रदेश, उत्तराखण्ड, महाराष्ट्र और राजस्थान सरकार जैन धर्मानुयायियों को अल्पसंख्यक घोषित कर चुकी हैं। अल्पसंख्यक मान्यता प्राप्त कर जैन समुदाय भी उपर्युक्त राज्यों में अब अपनी शिक्षण संस्थाओं का प्रबंध अन्य अल्पसंख्यक समुदायों के लिये निर्धारित मानक के अनुसार स्वयं करने के लिये स्वतंत्र हो गया है।

---

## सामयिक परिदृश्य

# क्षणिकाएं

साधुओं के आचार पर अंगुलि उठाने का किसी को अधिक्रार नहीं है
वे हैं परमपूज्य, सब नियमों से ऊपर, क्या यह ज्ञात नहीं है
फिर क्यों होती है चर्चा पत्र-पत्रिकाओं में उनके शिथिलाचार-एकलविहार की,
आक्रोश फूट पड़ता है उनका जनसभा में, क्या इसका भान नहीं है।।

** ** **

माना कठोर चर्या और ज्ञान के हैं धनी
क्रोध-मान, राग-द्वेष से आत्मा है सनी
जयकार करते भक्तों की भीड़ ही है सुहाती,
क्या खूब छवि उनकी मन पर है बनी।।

** ** **

तेरहपंथ-बीसपंथ के बीच अब जंग छिड़ी है
एक दूसरे पर वार-प्रतिवार की झड़ी लगी है
इस आग में घी डाल रहे हमारे साधुवृन्द,
अल्पसंख्यकों को और बांटने की साजिश रची है।।

**-रमा कान्त जैन**

# अभिनन्दन

१८ अप्रैल, २००८ ई. को श्रवणबेलगोल में आयोजित समारोह में कर्मयोगी स्वस्तिश्री चारुकीर्ति भट्टारक जी के सानिध्य में कर्नाटक हाईकोर्ट के पूर्व न्यायाधीश श्री अजित कब्बिन द्वारा देश के १० विद्वानों को पुरस्कार निम्नवत प्रदान किये गये- (क) **श्री गोम्मटेश्वर विद्यापीठ प्रशस्ति, २००८- डॉ. ए. सुन्दर,** मैसूर (कर्नाटक इतिहास); **प्रो. नागराज पूवणी,** उजरे (कन्नड साहित्य); **डॉ. बालासाहेब लोकापुर,** बागलगकोट (कर्नाटक साहित्य-संस्कृति); **डॉ. किरण क्रान्त चौधरी,** तिरुपति (आंध्र में जैन चरित्र संस्कृति और पुरातत्त्व); **प्रो. प्रेम सुमन जैन,** उदयपुर (प्राकृत भाषा एवं साहित्य); **डॉ. सत्य प्रकाश जैन शास्त्री,** दिल्ली (पत्रकारिता एवं समाजसेवा); **डॉ. नलिन के. शास्त्री,** बोधगया (जैन धर्म एवं विज्ञान) तथा **डॉ. रमेशचन्द जैन,** बिजनौर (जैन संस्कृत साहित्य) को। (ख) **श्री गोम्मटेश्वर विद्यापीठ सांस्कृतिक प्रशस्ति श्री जी. टी. जिनकल्लप्पा,** हासनको को ; तथा (ग) **श्री ए. आर. नागराज प्रशस्ति श्रीमती नवरत्न इन्दुकुमार,** चिकमंगलूर को।

२१ अप्रैल को श्री महावीर जी में **आचार्य राजाराम जैन** को उनकी कृति **'जैन धर्म और आयुर्वेद'** हेतु **वर्ष २००७ का ब्र. पूरणचन्द रिद्धिलता लुहाड़िया पुरस्कार** प्रदान किया गया।

३० अप्रैल को उ.प्र. विधान परिषद में शिक्षक निर्वाचन क्षेत्र से आगरा से **श्री जगवीर किशोर जैन** (शर्मा गुट) पुनः विजयी हुए।

आई.ए.एस. परीक्षा के इस वर्ष घोषित परिणामों में नई दिल्ली की **कु. आशिमा जैन** ने महिलाओं में सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया।

**डॉ. एस. पी. पाटील** (सांगली) को जैन सिद्धान्तों के अध्ययन-अध्यापन, प्रचार-प्रसार तथा जैन साहित्य में अनुसन्धान हेतु कुन्दकुन्द भारती, नई दिल्ली, द्वारा **सिद्धान्तचक्रवर्ती आचार्य नेमिचन्द्र पुरस्कार** तथा **विद्वत्रत्न** की उपाधि से सम्मानित किया गया।

जैन युवारत्न **श्री हसमुख गाँधी** हूमड़ जैन समाज फेडरेशन के राष्ट्रीय अध्यक्ष निर्वाचित हुए।

**श्री अनोखीलाल कोठारी (उदयपुर)** को भारतीय वाङ्मय पीठ, कोलकाता, ने **'सारस्वत साहित्य सम्मान'** से अलंकृत किया।

**श्री राजेन्द्र कुमार जैन (मुम्बई)** २२ जून को हस्तिनापुर में सम्पन्न भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी के अध्यक्ष पद का चुनाव दो तिहाई मत प्राप्त कर विजयी हुए।

**डॉ. अनुपम जैन (इन्दौर)** को इस वर्ष महावीर जयन्ती पर श्यामसुन्दर शास्त्री श्रुत प्रभावक न्यास, फिरोजाबाद, द्वारा **महाकवि रइधू पुरस्कार २००८** प्रदान किया गया और **जैन अंक विद्या भास्कर** की उपाधि से अलंकृत किया गया।

१६ मई को नई दिल्ली में भगवान महावीर फाउण्डेशन, चेन्नई, के ११वें और १२वें महावीर अवार्ड निम्नलिखित ६ व्यक्तियों और संस्थाओं को महामहिम राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटील द्वारा प्रदान किये गये-१. **श्री भरत अमृतलाल कोठारी, गुजरात**, को अहिंसा एवं शाकाहार के क्षेत्र में उत्कृष्ट सेवाओं के लिये; २. **डॉ. शिवकुमार सरीन, निदेशक जी. बी. पन्त अस्पताल, नई दिल्ली,** को शिक्षा एवं स्वास्थ्य के क्षेत्र में कार्य हेतु; और ३. **डॉ. किशोर कुणाल, पटना,** को समाज एवं समुदाय सेवा हेतु, ११वां अवार्ड; तथा १२वां अवार्ड १. **एक्शन फॉर प्रोटेक्शन ऑफ वाइल्ड एनीमल्स, उड़ीसा,** संस्था को अहिंसा एवं शाकाहार क्षेत्र में; २. **महात्मा गांधी इन्स्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइन्सेज, सेवाग्राम (महाराष्ट्र)** को शिक्षा एवं स्वास्थ्य सेवा के क्षेत्र में; और ३. **अमर सेवा संगम, आयकुडी, तमिलनाडु,** को समाज एवं समुदाय सेवा के क्षेत्र में।

फोटो पत्रकारिता में विख्यात **पद्मश्री वीरेन्द्र प्रभाकर** को उनकी बहुमुखी प्रतिभा के लिये अमेरिकन बायोग्रेफिकल इन्स्टीट्यूट द्वारा **स्वर्ण पदक** से सम्मानित किया गया।

राजस्थली मधुबन चौक, दिल्ली, में अप्रैल में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा विधि विधान से सम्पन्न कराने वाले टीकमगढ़ के **पं. गुलाबचंद्र जैन 'पुष्प' को 'प्रतिष्ठा पितामह'** तथा **ब्र. जयकुमार 'निशांत'** को **'प्रतिष्ठा चूड़ामणि'**; की उपाधि से अलंकृत किया गया।

**उपर्युक्त सभी सम्मानित महानुभावों का उनकी उपलब्धियों के लिये शोधादर्श परिवार अभिनन्दन करता है और उन्हें अपनी शुभकामना अर्पित करता है।**

---

# कविवर बुधजन

सम्मुख पृष्ठ पर प्रस्तुत राग-आसावरी में निबद्ध-आध्यात्मिक पद जयपुर निवासी, बज गोत्रीय खण्डेलवाल जैन कवि बुधजन (सन् १७७३-१८३८ ई.) का है। इनका मूल नाम बिरधीचन्द्र या भदीचन्द्र बताया जाता है। इन्हें **'षट् ढाल'** (छहढाला), **'तत्त्वार्थ बोध', 'बुधजन सतसई', पंचास्तिकाय'** का हिन्दी पद्यानुवाद आदि कृतियां रचने का श्रेय है। इनकी स्फुट रचनाओं का संकलन **'बुधजन विलास'** नाम से हुआ है।

# ज्योति प्रसाद जैन ट्रस्ट, लखनऊ

पुस्तकालयों, शोध संस्थानों और जिज्ञासु पाठकों की सुविधा के लिए यह व्यवस्था की गई है कि वे मात्र रु. ५०/- डाक-व्यय के रूप में मनीआर्डर द्वारा श्री रमा कान्त जैन, न्यास-सचिव, ज्योति प्रसाद जैन ट्रस्ट, ज्योति निकुंज, चारबाग (रोडवेज बस स्टेशन के पीछे), लखनऊ-२२६००४ को भेजकर निम्नलिखित साहित्य निर्मूल्य (फ्री) प्राप्त कर सकते हैं :-

१. **भगवान महावीर स्मृति ग्रन्थ** - सम्पादक डॉ. ज्योति प्रसाद जैन (महावीर वचनामृत; महावीर स्तवन; महावीर : युग, जीवन और देन; जैन धर्म, दर्शन और संस्कृति; शाकाहार; उत्तर प्रदेश और जैन धर्म-६ खण्डों में प्रामाणिक विवेचन)। मूल्य ५०/- रु.

२. **युग-युग में जैन धर्म** - लेखक डॉ. ज्योति प्रसाद जैन

(जैन धर्म और दर्शन; अनुश्रुतिगम्य इतिहास; ऐतिहासिक काल में जैन धर्म; जैन इतिहास के साधन-स्रोत; जैन कला; भारतीय संस्कृति को योगदान; तथा सहायक ग्रन्थ सूची)। मूल्य ५०/- रु.

३. **गिलास आधा भरा है** - लेखक श्री रमा कान्त जैन

(व्यावहारिक एवं प्रेरणाप्रद १६ ललित निबंधों का संग्रह)। मूल्य ५०/- रु.

४. Mysteries of Life and Eternal Bliss by Prof, Anant Prasad Jain

५. **जीवन रहस्य एवं कर्म रहस्य** - लेखक प्रो. अनन्त प्रसाद जैन

अन्य विविध महत्वपूर्ण एवं उपयोगी साहित्य भी साथ में उपलब्ध कराया जायेगा।

**- रमा कान्त जैन**

---

# अध्यात्मिक पद

बाबा, मैं न काहूका, कोई नहीं मेरा रे।
सुर-नर-नारक-तिर्यक गति में, मोको करमन घेरा रे।।१।।
माता-पिता-सुत तियकुल परिजन, मोह-गहल उरझेरा रे।
तन-धन-वसन-भवन जड़ न्यारे, हूँ चिन्मूरति न्यारा रे।।२।।
मुझ विभाव जड़ कर्म रचत है, करमन हमको फेरा रे।
विभाव-चक्र तजि धारि सुभावा, निज आनन्द-धन हेरा रे।।३।।
खरच खेद नहिं अनुभव करते, निरखि चिदानन्द तेरा रे।
जप-तप व्रत श्रुत सार यही है, 'बुधजन' कर न अबेरा रे।।४।।

# पाठकों के पत्र

**शोधादर्श** का ६४वां अंक प्रथम दृष्टया अति विशिष्ट लगा। इस अंक की कतिपय विशिष्टताओं की ओर पाठक वृन्द का ध्यान आकर्षित करने में मैं स्वयं को गौरवान्वित अनुभव कर रहा हूँ।

मुख पृष्ठ पर प्राचीन शिल्प कला की अनूठी कृति 'सरस्वती' का कलात्मक सौंदर्य से परिपूर्ण चित्र और अंदर के पृष्ठों में उड़ेला गया सरस्वती की वरद सन्तानों का परिष्कृत एवं उच्चकोटि के ज्ञान का प्रकाशन 'शोधादर्श' के साहित्यिक ऐतिहासिक एवं जैन मत संबंधी ज्ञान में चार चाँद लगा देता है। संपादक मण्डल की जितनी तारीफ की जाय कम है।

साथ ही साथ मुझे शोधादर्श में एक ऐसी पत्रिका के दर्शन हुए हैं जिसमें मुद्रण, भाषा, तथा ऐतिहासिक आख्या संबंधी त्रुटि ढूंढने से भी नहीं मिलती है।

भाई रमा कान्त जैन की 'क्षणिकायें' सदैव की भांति बेजोड़ हैं। उनकी अपनी अलग पहचान है। सामयिक विषयों और समस्याओं पर कटाक्ष करने की उनकी अपनी विशिष्ट शैली है।

श्रीमती इन्दु कान्त जैन ने सूक्ष्म विषय 'क्रोध' का तात्विक विवेचन करने में अपनी योग्यता और अर्जित ज्ञान का परिचय दिया है, वे बधाई की पात्र हैं।

संत कवि पारदर्शी की कुंडलिया चुटीले व्यंग्य का सुंदर उदाहरण हैं। बिहारी के शब्दों में 'देखन में छोटे लगें, घाव करें गंभीर'।

डॉ. शशि कान्त जैन की कृति 'जैन संदेश शोधांक : एक पर्यालोचन', एक सिद्धहस्त लेखक, उद्भट विद्वान एवं इतिहास मर्मज्ञ की गवेषणात्मक शैली का उत्कृष्ट उदाहरण है। गंभीर एवं नीरस विषय को रोचक ढंग से प्रस्तुत करने में उन्हें महारत प्राप्त है।

'गुरुगुण-कीर्तन' के अंतर्गत डॉ. नेमिचंद्र शास्त्री ज्योतिषाचार्य की बहुमुखी एवं विलक्षण प्रतिभा का भाई रमा कान्त जैन ने अत्यन्त सरस, तथ्य युक्त एवं भावपूर्ण विवेचन किया है। **- श्री कैलाशनारायण टण्डन, कानपुर**

अंक ६४ में प्रकाशित 'गुरुगुण-कीर्तन' के अन्तर्गत डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री ज्योतिषाचार्य के रचनाधर्मी व्यक्तित्व का परिचय अत्यन्त प्रेरक है। यदि यह कहा जाए कि शास्त्री जी व्यक्ति नहीं, व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा हैं तो अतिशयोक्ति न होगी। **'जैन सन्देश शोधांक'** के सम्बन्ध में जानकारी काफी ज्ञानवर्धक है। साध्वी प्रवीण कुमार 'प्रीति' ने **'अनुत्तरौपपातिक सूत्र'** के सन्दर्भ में अपरिग्रह का विद्वतापूर्ण विवेचन किया है। आपके माध्यम से उन्हें हार्दिक साधुवाद !

जैन समाज की उपलब्धियां प्रारम्भ से ही बहु आयामी रही हैं। स्वतंत्रता आन्दोलन में भी उनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। श्री अमित जैन का लेख इस सन्दर्भ को उत्तमता के साथ रेखांकित करता है। अमेरिका के जैन मंदिरों का परिचय रोचक तथा उत्साहवर्धक है, ज्ञानवर्धक तो है ही। कविताओं में डॉ. महेन्द्र सागर प्रचण्डिया का आध्यात्मिक गीत, श्री दयानन्द जड़िया 'अबोध' के सोरठे तथा श्री लूणकरण नाहर जैन का 'जयन्ती -गीत' विशेषता से प्रभावित करने वाली रचनाएँ हैं।

कुल मिलाकर प्रस्तुत अंक नयनाभिराम मुख पृष्ठ, आकर्षक कलेवर, निर्दोष मुद्रण तथा स्तरीय सामग्री - सभी दृष्टियों से सर्वथा स्वागत योग्य है।

**- डॉ. गणेशदत्त सारस्वत, सीतापुर**

**शोधादर्श** का अंक ६४ प्राप्त कर धन्यता का बोध हुआ। **'शोधादर्श'** सच्चे अर्थ में एक अन्वर्थनामा शोध-पत्रिका है। प्रस्तुत अंक द्वारा कतिपय पुण्यश्लोक जैन मनीषियों की साहित्य-साधना की प्रामाणिक विवरणी के समाकलन की दृष्टि से जैन साहित्येतिहास का विस्तार हुआ है। शोधकर्ताओं के लिए यह अंक परम उपादेय सिद्ध होगा। शोध-तत्त्वों की प्रामाणिक और विश्वसनीय जानकारी के खयाल से यह अंक अपना ऐतिहासिक महत्व आयत्त करता है, इसलिए यह पठनीय है और संग्रहणीय है।

**- डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव, पटना**

**शोधादर्श** ६४ की पूरी सामग्री अत्यंत ही महत्वपूर्ण एवं विचार प्रेरक है। इसमें श्री रमा कांत जी सम्पादक द्वारा गुरुगुण-कीर्तन में डॉ. नेमीचंद्र जी शास्त्री का परिचय एवं डॉ. शशि कांत जी का 'जैन संदेश शोधांक : एक पर्यालोचन' लेख, तथा साध्वी प्रवीण कुमार प्रीति का लेख 'अपरिग्रह' बहुत ही उपयोगी शिक्षाप्रद एवं विचार प्रेरक हैं। **शोधादर्श** सृजनात्मक साहित्य को स्थान देता है। आप डॉ. श्रद्धेय ज्योति प्रसाद जी के महान कार्यों को आगे बढ़ा रहे हैं।

**-डॉ. ताराचंद्र जैन बख्शी, जयपुर**

**शोधादर्श** ६४ में डॉ. शशि कांत द्वारा 'जैन सन्देश शोधांक : एक पर्यालोचन' की अभिव्यक्ति सभी लेखकों-पाठकों के लिए आदर्श है, अनुकरणीय है, अभिनंदनीय है। शोध कार्य कर पी-एच.डी. की गरिमामयी उपाधि अर्जित करने वालों को आपकी पत्रिका के माध्यम से हार्दिक बधाई!

**- डॉ. रतनलाल जैन, हांसी**

अंक ६४ विविध महत्वपूर्ण जानकारी से ओतप्रोत है। आवरण पृष्ठ पर बनी सरस्वती जी की मूर्ति कलात्मक और आकर्षक है। डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री ज्योतिषाचार्य संबंधी आलेख उनके व्यक्तित्व तथा साहित्य सेवाओं संबंधी अच्छी विस्तृत जानकारी सामने रखता है।

सम्पादकीय गुजरात संबंधी उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर संकेतात्मक प्रकाश डालकर उसे उचित ठहराती है। 'मल्लिषेण प्रशस्ति' संबंधी जानकारी प्रथम बार पढ़ने को मिली । अच्छी है। इसी प्रकार जैन संदेश शोधांक आदि विषयक जानकारी भी ध्यान देने योग्य है। डॉ. ज्योति प्रसाद जी की साहित्य सेवा निश्चय ही प्रशंसनीय है।

कवि भागचंद्र संबंधी महावीराष्टक स्तोत्र व उसका हिन्दी पद्यानुवाद सुन्दर पठनीय बन पड़ा है। इस संदर्भ में डॉ. विदुषी भारद्वाज संबंधी आलेख विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है। क्रोध तथा विक्रम साराभाई संबंधी आलेख संक्षिप्त होते हुए भी सारगर्भित हैं। अमेरिका के जैन मंदिर विशिष्ट जानकारी प्रस्तुत करते हैं। ज्ञानवर्धक है।

समदर्शिता, आध्यात्मिक गीत, कविताएं प्रेरणास्पद हैं। शिक्षा ग्रहण करना चाहिए। रमा कान्त जैन की क्षणिकाएं आधुनिक युग के परिदृश्य में आकर्षित करती हैं।

साहित्य सत्कार एवं समाचार विविधा सदा की भांति ज्ञानवर्द्धक होकर अच्छी जानकारी देते हैं।

अंक की अन्य सामग्री भी पठनीय है। इस प्रकार अंक सुन्दर संग्रहणीय बन पड़ा है। सम्पादक मण्डल और सहयोगी भाई बधाई के पात्र हैं!

**- श्री मदनमोहन वर्मा, ग्वालियर**

शोधादर्श ललाम मिला। गुरु-गुण कीर्तन औ क्षणिकाएं।
पढ़ हृदय-कंज अभिराम खिला।। रमाकान्त जी ने हैं गाये।
यह चौंसठवां अंक सलोना। है आध्यात्मिक गीत सुहाना।
महकाता मन का हर कोना।। जो 'अबोध' ने रुचिकर माना।।

**- श्री दयानन्द जड़िया 'अबोध', लखनऊ**

Received the copies of Shodhadarsh 63 & 64. Shodhadarsh 63 : The article on Late Dr. A. N. Upadhye is a superb one. It gives in short the background of voluminous works produced by Dr Upadhye and his ardent faith in editing Jaina Classics and his noble personality in a befitting manner. It is interesting, enlightening, and ever inspiring to the students of Jainology.

Shodhadarsh 64 : 'Jain Sandesh Shodhanka' by Dr. Shashi Kant contains very useful rare information. The great personalities who dedicated their life for the spread of Jain learning have been vividly described, The historical and traditional accounts will help to reconstruct the background and development of Jain Journalism.

**- Dr. S. P. Patil, Sangli**

वास्तव में **शोधादर्श** यथानाम तथागुण है। सभी सामग्री पठनीय, मननीय और संग्रहणीय है। **- श्री शीतल प्रसाद जैन, भोपाल**

**शोधादर्श** ६४ प्राप्त हुआ। प्रत्येक लेख अत्यन्त ज्ञानवर्धक है। जैसे जैसे पढ़ती जाती हूँ सम्पादक मंडल के प्रति आदर भाव बढ़ता जाता है। आप सबके प्रयास से इतनी जानकारी मिली है। **- श्रीमती राजदुलारी जैन, कानपुर**

**शोधादर्श** ६२, ६३ और ६४ की त्रिवेणी हृदय को आह्लादित कर रही है। प्रसन्नता है परम श्रद्धेय (स्व.) ज्योति प्रसाद जी एवं मान्य (स्व.) श्री अजित प्रसाद जी से प्राप्त सुसंस्कारों एवं लेखन, सम्पादन के गुर अपनाते हुए सम्पादक मण्डल निरन्तर गतिवान है। 'गुरुगुण-कीर्तन' में डॉ. हीरालाल, डॉ. आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये और डॉ. नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य के अवदान की चर्चा श्री रमा कान्त ने सुविस्तृत ढंग से की है। डॉ. शशि कान्त, डॉ. चीरंजीलाल बगड़ा, श्री जमनालाल जैन और डॉ. ज्योति प्रसादजी के लेख प्रायः चिन्तनपरक एवं तथ्यात्मक रहते हैं। 'मेरी भावना' विषयक जस्टिस एम. एल. जैन के तथा कविवर पंकज सम्बन्धी श्री रमा कान्त के परिचयात्मक कथ्य, डॉ. शशिकान्त का जैन सन्देश शोधांक पर लेख तथा महावीर की प्रथम सहस्राब्दी बाबत ललित चित्रण आकर्षक हैं। डॉ. सतीशचन्द्र अवस्थी ने उत्तर प्रदेश के जैन तीर्थों का विवरण संक्षिप्त किन्तु सार्थक रीत्या दिया है। यूं तो शोधादर्श की प्रायः सम्पूर्ण सामग्री सुपाठ्य एवं सुग्राह्य रहती है, प्रशंस्य यह है कि श्री रमा कान्त भूले बिसरे जैन कर्मठ व्यक्तित्व को अखिल भारतीय पहचान तो दिलाते हैं, अन्यथा आपाधापी के व्यस्त क्षणों में किस सम्पादक को कहाँ इतना अवकाश है?

**- श्री मोती लाल जैन 'विजय', कटनी**

**शोधादर्श**-६४ में 'भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन में सहारनपुर जनपद की जैन समाज का योगदान' की जानकारी पाकर जैन समाज का अंग होने का गौरव अनुभव किया। केवल सहारनपुर ही नहीं सम्पूर्ण भारतवर्ष की जैन समाज ने अल्प संख्या में होते हुए भी स्वतंत्रता संग्राम में बढ़-चढ़कर भाग लिया ओर स्वातंत्र्योत्तर भारत के पुनर्निर्माण में अहम भूमिका निभायी। इसी लेख से यह सुखद जानकारी भी मिली कि सहारनपुर नगर अकबर के समय में शाही खजांची अग्रवाल जैन साह रनवीर सिंह ने बसाया था और उनके नाम पर नगर सहारनपुर कहलाया।

**- श्रीमती वीरबाला जैन, सहारनपुर**

# बीसवीं शती के शीर्षस्थ विद्वानों का एक दुर्लभ चित्र

सन् १९८० ई. में सागर में आचार्य विद्यासागर महाराज के सानिध्य में हुई धवला-वाचना के समय लिया गया चित्र जिसमें पं. फूलचन्द्र शास्त्री, पं. जगन्मोहन लाल शास्त्री, पं. कैलाश चन्द्र शास्त्री, पं. बंशीधर शास्त्री, डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य, पं. हीरालाल (ब्यावर), पं. श्रुतसागर (शाहपुर) सेठ भगवान दास शोभालाल के साथ बैठे दिखायी दे रहे हैं।

(श्री गणेश वर्णी संस्थान समाचार, वाराणसी, जनवरी-मार्च २००२ से साभार)

## सरस्वती वन्दना

देवि! श्री श्रुतदेवते! भगवति ! त्वत्पादपङ्कजरुह
द्वन्दे यामि शिलीमुखत्वमपरं भक्त्या मया प्रार्थ्यते।।
मातश्चेतसि तिष्ठ मे जिनमुखोद्भूते सदा त्राहि माम्।
दृग्दानेन मयि प्रसीद भवतीं संपूजयामोऽधुना।।

**(विश्वलोचनकोश से साभार)**

# आवश्यक सूचना

*इस वर्ष का वार्षिक शुल्क ५० रु. (पचास रुपये), यदि अभी नहीं भेजा हो, तो कृपया मनीआर्डर द्वारा 'महामंत्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र., ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ-२२६ ००४', को शीघ्र ही भेजने का अनुग्रह करें। चेक लखनऊ के ही स्वीकार होंगे। एक प्रति का मूल्य २० रु. (बीस रुपये) है। मनीआर्डर भेजने पर उसकी सूचना एक पोस्ट कार्ड पर भी अपने पूरे नाम पते के साथ अवश्य भेजें।*

*शोधादर्श* चातुर्मासिक पत्रिका है और सामान्यतया इसके अंक मार्च, जुलाई व नवम्बर में प्रकाशित होते हैं।

*शोधादर्श* में प्रकाशनार्थ शोधपरक एवं अप्रकाशित लेख आमंत्रित हैं। लेख कागज के एक ओर सुवाच्य अक्षरों में लिखित अथवा टंकित होना चाहियें और उसमें यथावश्यक सन्दर्भ/स्रोत सूचित किये जाने चाहियें। यथासंभव लेख ३-४ टंकित पृष्ठ से अधिक न हो। *लेख की एक प्रति अपने पास अवश्य रख लें। अप्रकाशित लेख-रचना लौटाना कठिन होगा।*

*शोधादर्श में समीक्षार्थ* पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं की *दो प्रतियां* भेजी जायें।

*शोधादर्श* में प्रकाशित लेखों को उद्धरित किये जाने में आपत्ति नहीं है, परन्तु *शोधादर्श* का श्रेय स्वीकार किया जाना और पूर्ण सन्दर्भ दिया जाना अपेक्षित है।

प्रकाशनार्थ लेख और समीक्षार्थ पुस्तक/पत्रिका सम्पादक को ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ- २२६ ००४, के पते पर भेजे जायें।

लेखक के विचारों से सम्पादक मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। लेखों में दिये गये तथ्यों और सन्दर्भों की प्रामाणिकता के संबंध में लेखक स्वयं उत्तरदायी है।

सभी विवाद लखनऊ में स्थित सक्षम न्यायालयों /न्यायाधिकरणों के क्षेत्राधिकार के अधीन होंगे।

सुधी पाठक कृपया अपनी सम्मति और सुझावों से अवगत करावें ताकि पत्रिका के स्तर को बनाये रखने और उन्नत करने में हमें प्रोत्साहन तथा मार्गदर्शन प्राप्त होता रहे। कृपया पत्रिका पहुँचने की सूचना भी देवें।

– ***सम्पादक***